2486
कल्याण
वर्ष १९
अङ्क ७

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम । जय रघुनन्दन जय सियाराम ॥
रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीताराम ॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ आगारा ॥

[संस्करण ९१, ३००]

नये ग्राहक बनने-बनानेवाले सज्जनोंकी सेवामें

वर्तमान वर्षमें कल्याणके नये ग्राहकोंकी संख्या बड़ी तेजीके साथ बढ़ रही है, जिससे पता चलता है कि ग्राहकोंने 'पद्मपुराणाङ्क' को बहुत ही पसंद किया है । इसकी माँग इतनी अधिक है कि पिछले चार महीनोंमें लगभग २०,००० नये ग्राहक बने हैं ।

'पद्मपुराणाङ्क' की इतनी लोकप्रियता देखकर उसका द्वितीय संस्करण छापनेकी व्यवस्था की गयी है, अतः ग्राहक बनने तथा बनानेवाले सज्जनोंकी सेवामें नम्र निवेदन है कि वे जिस उत्साहके साथ अबतक ग्राहक बढ़ाते आये हैं उसी प्रकार आगे भी बढ़ाते रहनेकी कृपा करेंगे ।

व्यवस्थापक—कल्याण, गोरखपुर

वार्षिक मूल्य भारतमें ४≡) विदेशमें ६॥≡) (१० शिलिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत् चित् आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति भारतमें ।) विदेशमें ।≡) (८ पेंस)

Edited by H. P. Poddar and C. L. Goswami, M. A., Shastri.
Printed and Published by Ghanshyamdas Jalan at the Gita Press, Gorakhpur, U. P. (India)

श्रीहरिः

कल्याण, अप्रैल सन् १९४५ की

विषय-सूची

संकलित

चित्र-सूची

तिरंगा

इकरंगे (लाइन)

सागरमें श्रीशेषशायी नारायण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
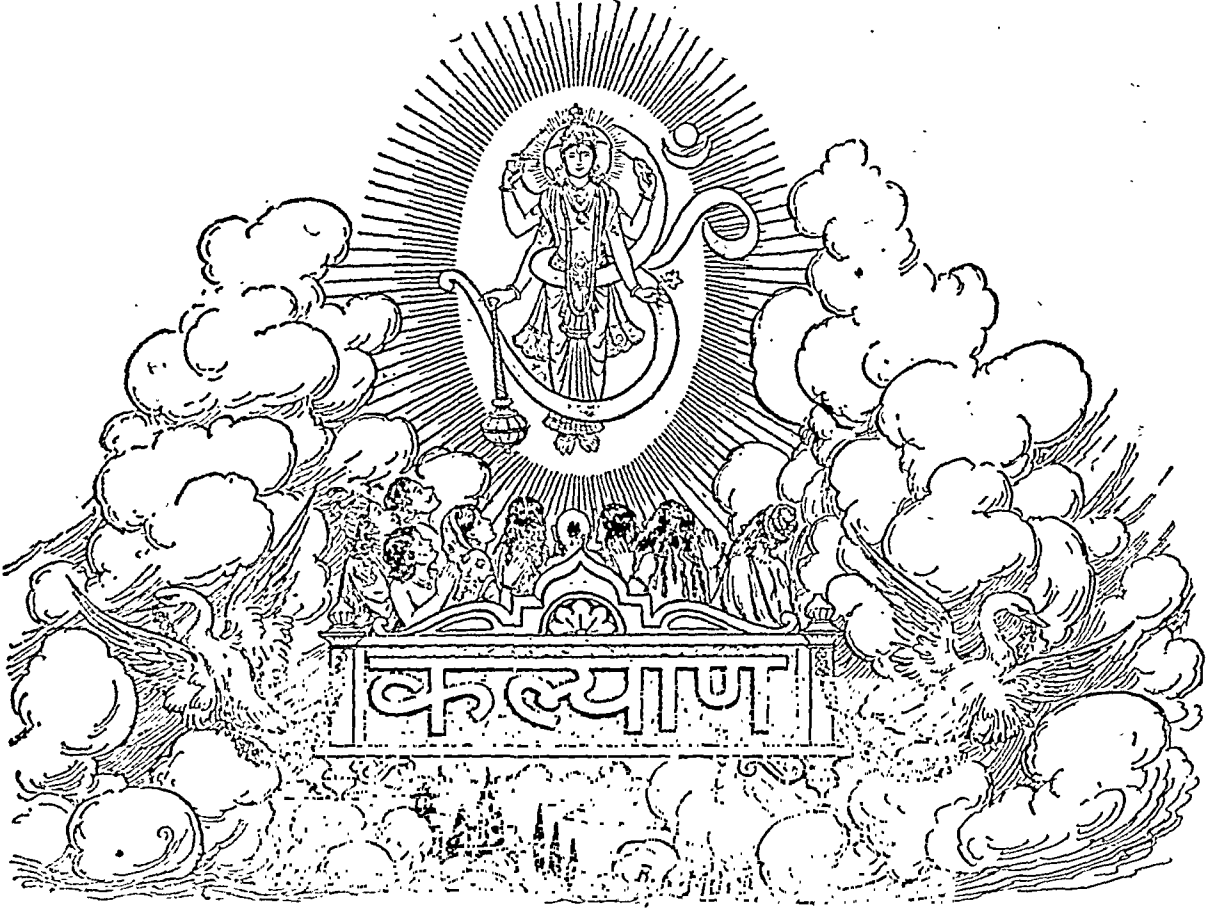
कृष्णं च रामं शरणं व्रजन्ति जपन्ति जाप्यैः परिपूजयन्ति ।
दण्डप्रणामैः प्रणमन्ति विष्णुं तद्ध्यानयुक्ताः परिवैष्णवास्ते ॥

वर्ष १९ } गोरखपुर, अप्रैल १९४५, सौर चैत्र २००२ { संख्या ७ पूर्ण संख्या २२३

नास्ति विष्णोः परं सत्यं नास्ति विष्णोः परो जपः ।
नास्ति विष्णोः परं ध्यानं नास्ति विष्णोः परा गतिः ॥
(पद्म० उत्तर० ७२ । १३४)

भगवान् श्रीविष्णुसे भिन्न कोई सत्य नहीं है, श्रीविष्णुसे बढ़कर जप नहीं है, श्रीविष्णुसे उत्तम ध्यान नहीं है तथा श्रीविष्णुसे श्रेष्ठ कोई गति नहीं है ।

भगवद्भक्तिकी श्रेष्ठता

हिंसाकर्ममयो यज्ञः कथं कर्मक्षये क्षमः ।
स्वर्गकामकृता यज्ञाः स्वर्गे ते चाल्पसौख्यदाः ॥
अनित्यानि तु सौख्यानि भवन्ति सुबहून्यपि ।
नित्यं सौख्यं न तेष्वस्ति विना भक्त्या हरेः क्वचित् ॥
सार्वभौमसुखं राज्यं स्वर्गे चापि तथा सुखम् ।
अन्यत्किञ्चिन्न वाञ्छामि गर्भवासाद् बिभेम्यहम् ॥
ग्राव्णा हि भिद्यते लोहैर्माणिक्यं नैव भिद्यते ।
नानाकामनया बुद्ध्या विष्णुभक्तिर्न भिद्यते ॥
बको जलचरान् भुङ्क्ते मण्डूकादींश्च वर्जयन् ।
तथा यमः सर्वहन्ता वर्जयेत्कृष्णसेवकान् ॥

(पद्म० उत्तर० १२८ । १४७—१५१)

हिंसाकर्ममय सकाम यज्ञ कर्म-बन्धनका नाश करनेमें कैसे समर्थ हो सकता है ? स्वर्गकी कामनासे किये हुए यज्ञ स्वर्गलोकमें अल्प सुख प्रदान करनेवाले होते हैं । कर्मजनित सुख अधिक मात्रामें हों तो भी वे अनित्य ही होते हैं, उनमें नित्य सुख है ही नहीं । भगवान् श्रीहरिकी भक्तिके बिना कहीं भी नित्य सुख नहीं मिलता । सम्राट् होनेका सुख, राज्यका सुख, स्वर्गमें भी सुलभ होनेवाला वैसा ही सुख तथा और भी जो कोई सुख होता है, वह सब कुछ मैं नहीं चाहता; क्योंकि मैं गर्भमें आनेसे डरता हूँ [इस भयसे वे सुख मुझे बचा नहीं सकते] । लोहेसे पत्थर छिद जाता है, किन्तु मणि नहीं छिदती, इसी तरह नाना प्रकारकी कामनाओंसे युक्त बुद्धि श्रीविष्णुकी भक्तिको नहीं दबा सकती । बगला जलचर जीवोंको भक्षण करता है, किन्तु मेढकोंको छोड़ देता है, उसी प्रकार सबका नाश करनेवाले यमराज भगवान् श्रीकृष्णके सेवकोंको त्याग देते हैं ।

त्रिरात्र तुलसीव्रतकी विधि और महिमा

नारदजी बोले—भगवन्! आपकी कृपासे मैंने तुलसीके माहात्म्यका श्रवण किया। अब त्रिरात्र तुलसीव्रतका वर्णन कीजिये।

महादेवजीने कहा—विद्वन्! तुम बड़े बुद्धिमान् हो, सुनो; यह व्रत बहुत पुराना है। इसका श्रवण करके मनुष्य निश्चय ही सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। नारद! व्रत करनेवाला पुरुष कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको नियम ग्रहण करे। पृथ्वीपर सोये और इन्द्रियोंको काबूमें रखे। त्रिरात्रव्रत करनेके उद्देश्यसे वह शौच-स्नानसे शुद्ध हो मनको संयममें रखते हुए प्रतिदिन रातको नियमपूर्वक तुलसीवनके समीप शयन करे। मध्याह्न-कालमें नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करके विधिपूर्वक देवताओं और पितरोंका तर्पण करे। इस व्रतमें पूजाके लिये लक्ष्मी और श्रीविष्णुकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनवानी चाहिये तथा उनके लिये दो वस्त्र भी तैयार करा लेने चाहिये। वस्त्र पीत और श्वेत वर्णके हों। व्रतके आरम्भमें विधिपूर्वक नवग्रह-शान्ति कराये, उसके बाद चरु पकाकर उसके द्वारा श्रीविष्णु देवताकी प्रीतिके लिये हवन करे। द्वादशीके दिन देवदेवेश्वर भगवान्‌की यत्नपूर्वक पूजा करके विधिके अनुसार कलश-स्थापन करे। कलश शुद्ध हो और फूटा-टूटा न हो। उसमें पञ्चरत्न, पञ्चपल्लव तथा ओषधियाँ पड़ी हों। कलशके ऊपर एक पात्र रखे और उसके भीतर लक्ष्मीजीके साथ भगवान् विष्णुकी प्रतिमाको विराजमान करे। फिर वैदिक और पौराणिक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए तुलसी-वृक्षके मूलमें भगवत्प्रतिमाकी स्थापना करे। तुलसीकी वाटिकाको केवल जलसे सींचे। फिर देवाधिदेव जगद्गुरु भगवान्‌को पञ्चामृतसे स्नान कराकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

प्रार्थना-मन्त्र

योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो
गर्भोदके लोकविधिं बिभर्ति।
प्रसीदतामेष स देवदेवो
यो मायया विश्वकृदेव रूपी॥

'जिनके रूपका कहीं अन्त नहीं है, सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, जो गर्भरूप (आधारभूत) जलमें स्थित होकर लोकसृष्टिका भरण-पोषण करते हैं और मायासे ही रूपवान् होकर समस्त संसारकी सृष्टि करते हैं, वे देवदेव परमेश्वर मुझपर प्रसन्न हों।'

आवाहन-मन्त्र

आगच्छाच्युत देवेश तेजोराशे जगत्पते।
सदैव तिमिरध्वंसिंस्त्राहि मां भवसागरात्॥

'हे अच्युत! हे देवेश्वर! हे तेजःपुञ्ज जगदीश्वर! यहाँ पधारिये; आप सदा ही अज्ञानान्धकारका नाश करनेवाले हैं, इस भवसागरसे मेरी रक्षा कीजिये।'

स्नान-मन्त्र

पञ्चामृतेन सुस्नातस्तथा गन्धोदकेन च।
गङ्गादीनां च तोयेन स्नातोऽनन्तः प्रसीदतु॥

'पञ्चामृत और चन्दनयुक्त जलसे भलीभाँति नहाकर गङ्गा आदि नदियोंके जलसे स्नान किये हुए भगवान् अनन्त मुझपर प्रसन्न हों।'

विलेपन-मन्त्र

श्रीखण्डागुरुकर्पूरकुङ्कुमादिविलेपनम्।
भक्त्या दत्तं मयाऽऽग्रेयं लक्ष्म्या सह गृहाण वै॥

'भगवन्! मैंने चन्दन, अरगजा, कपूर और केसर आदिका सुगन्धित अङ्गराग भक्तिपूर्वक अर्पण किया है; आप श्रीलक्ष्मीजीके साथ इसे स्वीकार करें।'

वस्त्र-मन्त्र

नारायण नमस्तेऽस्तु नरकार्णवतारण।
त्रैलोक्याधिपते तुभ्यं ददामि वसनं शुचि॥

'नरकके समुद्रसे तारनेवाले नारायण! आपको नमस्कार है। त्रिलोकीनाथ! मैं आपको पवित्र वस्त्र अर्पण करता हूँ।'

यज्ञोपवीत-मन्त्र

दामोदर नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात्।
ब्रह्मसूत्रं मया दत्तं गृहाण पुरुषोत्तम॥

'दामोदर! आपको नमस्कार है, भवसागरसे मेरी रक्षा

कीजिये। पुरुषोत्तम ! मैंने ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) अर्पण किया है, आप इसे ग्रहण करें।'

पुष्प-मन्त्र

'पुष्पाणि च सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।
मया दत्तानि देवेश प्रीतितः प्रतिगृह्यताम्॥

'प्रभो ! मैंने मालती आदिके सुगन्धित पुष्प सेवामें प्रस्तुत किये हैं, देवेश्वर ! आप इन्हें प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करें।'

नैवेद्य-मन्त्र

नैवेद्यं गृह्यतां नाथ भक्ष्यभोज्यैः समन्वितम्।
सर्वैं रसैः सुसम्पन्नं गृहाण परमेश्वर॥

'नाथ ! भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे युक्त नैवेद्य स्वीकार कीजिये; परमेश्वर ! यह सब रसोंसे सम्पन्न है, इसे ग्रहण करें।'

ताम्बूल-मन्त्र

पूगानि नागपत्राणि कर्पूरसहितानि च।
मया दत्तानि देवेश ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्॥

'देवेश्वर ! मैंने सुपारी, पानके पत्ते और कपूर आपकी सेवामें भेंट किये हैं; आप यह बीड़ा स्वीकार करें।'

तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक धूप, अगर तथा घी मिलाया हुआ गुग्गुल—इनकी आहुति देकर भगवान्‌को सुँघाये। इस प्रकार पूजा करनी चाहिये। घीका दीपक जलाना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ ! एकाग्रचित्त हो भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायणके सामने तथा तुलसीवनके समीप नाना प्रकारका दीपक सजाना चाहिये। चक्रधारी देवाधिदेव विष्णुको प्रतिदिन अर्घ्य भी देना चाहिये। पुत्र-प्राप्तिके लिये नवमीको नारियलका अर्घ्य देना उत्तम है। धर्म, काम तथा अर्थ—तीनोंकी सिद्धिके लिये दशमीको बिजौरेका अर्घ्य अर्पण करना उचित है तथा एकादशीको अनारसे अर्घ्य देना चाहिये; इससे सदा दरिद्रताका नाश होता है। नारद ! बाँसके पात्रमें सप्तधान्य रखकर उसमें सात फल रखे; फिर तुलसीदल, फूल एवं सुपारी डालकर उस पात्रको वस्त्रसे ढक दे। तत्पश्चात् उसे भगवान्‌के संमुख निवेदन करे। विप्रेन्द्र ! अर्घ्य निम्नाङ्कित मन्त्रसे देना चाहिये; इसे एकाग्रचित्त होकर सुनो—

अर्घ्य-मन्त्र

तुलसीसहितो देव सदा शङ्खेन संयुतम्।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवदेव नमोऽस्तु ते॥

'देव ! आप तुलसीजीके साथ मेरे दिये हुए इस शङ्खयुक्त अर्घ्यको ग्रहण करें। देवदेव ! आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार लक्ष्मीसहित देवेश्वर भगवान् विष्णुकी पूजा करके व्रतकी पूर्तिके निमित्त उन देवदेवेश्वरसे प्रार्थना करे—

उपोषितोऽहं देवेश कामक्रोधविवर्जितः।
व्रतेनानेन देवेश त्वमेव शरणं मम॥
गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव यदपूर्णं कृतं मया।
सर्वं तदस्तु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन॥
नमः कमलपत्राक्ष नमस्ते जलशायिने।
इदं व्रतं मया चीर्णं प्रसादात्तव केशव॥
अज्ञानतिमिरध्वंसिन् व्रतेनानेन केशव।
प्रसादसुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥*

'देवेश्वर ! मैंने काम-क्रोधसे रहित होकर इस व्रतके द्वारा उपवास किया है। देवेश ! आप ही मेरे शरणदाता हैं। देव ! जनार्दन ! इस व्रतको ग्रहण करके मैंने इसके जिस अङ्गकी पूर्ति न की हो, वह सब आपके प्रसादसे पूर्ण हो जाय। कमलनयन ! आपको नमस्कार है। जलशायी नारायण ! आपको प्रणाम है। केशव ! आपके ही प्रसादसे मैंने इस व्रतका अनुष्ठान किया है। अज्ञानान्धकार-का विनाश करनेवाले केशव ! आप इस व्रतसे प्रसन्न होकर मुझे ज्ञान-दृष्टि प्रदान करें।'

तदनन्तर रातमें जागरण, गान तथा पुस्तकका स्वाध्याय करे। गानविद्या तथा नृत्यकलामें प्रवीण पुरुषों-द्वारा संगीत और नृत्यकी व्यवस्था करे। अत्यन्त सुन्दर एवं पवित्र उपाख्यानोंके द्वारा रात्रिका समय व्यतीत करे। निशाके अन्तमें प्रभात होनेपर जब सूर्यदेवका उदय हो जाय, तब ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करके भक्तिपूर्वक वैष्णव श्राद्ध करे। यज्ञोपवीत, वस्त्र, माला तथा चन्दन देकर वस्त्राभूषण एवं केसरके द्वारा पूजनपूर्वक तीन ब्राह्मण-दम्पतीको भोजन कराये। घृत-मिश्रित खीरके द्वारा यथेष्ट भोजन करानेके

* उत्तरखण्डके २६ वें अध्यायसे उद्धृत।

पश्चात् दक्षिणासहित पान, फूल और गन्ध आदि दान करे। अपनी शक्तिके अनुसार बाँसके अनेक पात्र बनवाकर उन्हें पके हुए नारियल, पकवान, वस्त्र तथा भाँति-भाँतिके फलोंसे भरे। सपत्नीक आचार्यको वस्त्र पहनाये। दिव्य आभूषण देकर चन्दन और मालासे उनका पूजन करे। फिर उन्हें सब सामग्रियोंसे युक्त दूध देनेवाली गौ दान करे। गौके साथ दक्षिणा, वस्त्र, आभूषण, दोहनपात्र तथा अन्यान्य सामग्री भी दे। श्रीलक्ष्मीनारायणकी प्रतिमा भी सब सामग्रियोंसहित आचार्यको दे। सब तीर्थोंमें स्नान करनेवाले मनुष्योंको जो पुण्य प्राप्त होता है, वह सब इस व्रतके द्वारा देव-देव विष्णुके प्रसादसे प्राप्त हो जाता है। व्रत करनेवाला पुरुष इस लोकमें मनको प्रिय लगनेवाले सम्पूर्ण पदार्थों और प्रचुर भोगोंका उपभोग करके अन्तमें श्रीविष्णुकी कृपासे भगवान् विष्णुके परमधामको प्राप्त होता है।

अन्नदान, जलदान, तडाग-निर्माण, वृक्षारोपण तथा सत्यभाषण आदिकी महिमा

नारदजीने पूछा—भगवन्! गुणोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको देनेकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य इस लोकमें किन-किन वस्तुओंका दान करे? यह सब बताइये।

महादेवजी बोले—देवर्षिप्रवर! सुनो—लोकमें तत्त्वको जानकर सज्जन पुरुष अन्नदानकी ही प्रशंसा करते हैं; क्योंकि सब कुछ अन्नमें ही प्रतिष्ठित है। अतएव साधु-महात्मा विशेषरूपसे अन्नका ही दान करना चाहते हैं। अन्नके समान कोई दान न हुआ है न होगा। यह चराचर जगत् अन्नके ही आधारपर टिका हुआ है। लोकमें अन्न ही बलवर्धक है। अन्नमें ही प्राणोंकी स्थिति है। कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उचित है कि वह अपने कुटुम्बको कष्ट देकर भी अन्नकी भिक्षा माँगनेवाले महात्मा ब्राह्मणको अवश्य दान दे। नारद! जो याचना करनेवाले पीड़ित ब्राह्मणको अन्न दे, वही विद्वानोंमें श्रेष्ठ है। यह दान आत्माके पारलौकिक सुखका साधन है। रास्तेका थका-माँदा गृहस्थ ब्राह्मण यदि भोजनके समय घरपर आकर उपस्थित हो जाय तो कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अवश्य उसे अन्न देना चाहिये। अन्नदाता इहलोक और परलोकमें भी सुख उठाता है। थके-माँदे अपरिचित राहगीरको जो बिना क्लेशके अन्न देता है, वह सब धर्मोंका फल प्राप्त करता है। अतिथिकी न तो निन्दा करे और न उससे द्रोह ही रखे। उसे अन्न अर्पण करे। उस दानकी विशेष प्रशंसा है।

महामुने! जो मनुष्य अन्नसे देवताओं, पितरों, ब्राह्मणों तथा अतिथियोंको तृप्त करता है, उसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। महान् पाप करके भी जो याचकको—विशेषतः ब्राह्मणको अन्न दान करता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है। ब्राह्मणको दिया हुआ दान अक्षय होता है। शूद्रको भी किया हुआ अन्न-दान महान् फल देनेवाला है। अन्न-दान करते समय याचकसे यह न पूछे कि वह किस गोत्र और किस शाखाका है, तथा उसने कितना अध्ययन किया है? अन्नका अभिलाषी कोई भी क्यों न हो, उसे दिया हुआ अन्नदान महान् फल देनेवाला होता है। अतः मनुष्योंको इस पृथ्वीपर विशेष रूपसे अन्नका दान करना चाहिये।

जलका दान भी श्रेष्ठ है; वह सदा सब दानोंमें उत्तम है। इसलिये बावली, कुआँ और पोखरा बनवाना चाहिये। जिसके खोदे हुए जलाशयमें गौ, ब्राह्मण और साधु पुरुष सदा पानी पीते हैं, वह अपने कुलको तार देता है। नारद! जिसके पोखरेमें गर्मीके समयतक पानी ठहरता है, वह कभी दुर्गम एवं विषम संकटका सामना नहीं करता। पोखरा बनवानेवाला पुरुष तीनों लोकोंमें सर्वत्र सम्मानित होता है। मनीषी पुरुष धर्म, अर्थ और कामका यही फल बतलाते हैं कि देशमें खेतके भीतर उत्तम पोखरा बनवाया जाय, जो प्राणियोंके लिये महान् आश्रय हो। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस तथा स्थावर प्राणी भी जलाशयका आश्रय लेते हैं। जिसके पोखरेमें केवल वर्षा ऋतुमें ही जल रहता है, उसे अग्निहोत्रका फल मिलता है। जिसके तालाबमें हेमन्त और शिशिर कालतक जल ठहरता है, उसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। यदि वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतुतक पानी रुकता हो तो मनीषी पुरुष अतिरात्र और अश्वमेध यज्ञोंका फल बतलाते हैं।

अब वृक्ष लगानेके जो लाभ हैं, उनका वर्णन सुनो।

महामुने ! वृक्ष लगानेवाला पुरुष अपने भूतकालीन पितरों तथा होनेवाले वंशजोंका भी उद्धार कर देता है। इसलिये वृक्षोंको अवश्य लगाना चाहिये। वह पुरुष परलोकमें जानेपर वहाँ अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है। वृक्ष अपने फूलोंसे देवताओंका, पत्तोंसे पितरोंका तथा छायासे समस्त अतिथियोंका पूजन करते हैं। किन्नर, यक्ष, राक्षस, देवता, गन्धर्व, मानव तथा ऋषि भी वृक्षोंका आश्रय लेते हैं। वृक्ष फूल और फलोंसे युक्त होकर इस लोकमें मनुष्योंको तृप्त करते हैं। वे इस लोक और परलोकमें भी धर्मतः पुत्र माने गये हैं। जो पोखरेके किनारे वृक्ष लगाते, यज्ञानुष्ठान करते तथा जो सदा सत्य बोलते हैं, वे कभी स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होते।

सत्य ही परम मोक्ष है, सत्य ही उत्तम शास्त्र है, सत्य देवताओंमें जाग्रत् रहता है तथा सत्य परम पद है। तप, यज्ञ, पुण्यकर्म, देवर्षि-पूजन, आद्यविधि और विद्या—ये सभी सत्यमें प्रतिष्ठित हैं। सत्य ही यज्ञ, दान, मन्त्र और सरस्वती देवी है; सत्य ही व्रतचर्या है तथा सत्य ही ओंकार है। सत्यसे ही वायु चलती है, सत्यसे ही सूर्य तपता है, सत्यके प्रभावसे ही आग जलाती है तथा सत्यसे ही स्वर्ग टिका हुआ है। लोकमें जो सत्य बोलता है, वह सब देवताओंके पूजन तथा सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका फल निःसंदेह प्राप्त कर लेता है। एक हजार अश्वमेध यज्ञका पुण्य और सत्य—इन दोनोंको यदि तराजूपर रखकर तौला जाय तो सम्पूर्ण यज्ञोंकी अपेक्षा सत्यका ही पलड़ा भारी होगा। देवता, पितर और ऋषि सत्यमें ही विश्वास करते हैं। सत्यको ही परम धर्म और सत्यको ही परम पद कहते हैं।* सत्यको परब्रह्मका स्वरूप बताया गया है; इसलिये मैं तुम्हें सत्यका उपदेश करता हूँ। सत्यपरायण मुनि अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके सत्यधर्मका पालन करते हुए इस लोकसे स्वर्गको प्राप्त हुए हैं। सदा सत्य ही बोलना चाहिये, सत्यसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। सत्यरूपी तीर्थ अगाध, विस्तृत एवं पवित्र ह्रद (कुण्ड) से युक्त है; योगयुक्त पुरुषोंको उसमें मनसे स्नान करना चाहिये। यही स्नान उत्तम माना गया है। जो मनुष्य अपने, पराये अथवा पुत्रके लिये भी असत्य भाषण नहीं करते, वे स्वर्गगामी होते हैं। ब्राह्मणोंमें वेद, यज्ञ तथा मन्त्र नित्य निवास करते हैं; किन्तु जो ब्राह्मण सत्यका परित्याग कर देते हैं, उनमें वेद आदि शोभा नहीं देते; अतः सत्य-भाषण करना चाहिये।

नारदजीने कहा—भगवन् ! अब मुझे विशेषतः तपस्याका फल बताइये; क्योंकि प्रायः सभी वर्णोंका तथा मुख्यतः ब्राह्मणोंका तपस्या ही बल है।

महादेवजी बोले—नारद ! तपस्याको श्रेष्ठ बताया गया है। तपसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। जो सदा तपस्यामें संलग्न रहते हैं, वे सदा देवताओंके साथ आनन्द भोगते हैं। तपसे मनुष्य मोक्ष पा लेता है, तपसे 'महत्' पदकी प्राप्ति होती है। मनुष्य अपने मनसे ज्ञान-विज्ञानका खजाना, सौभाग्य और रूप आदि जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे तपस्यासे मिल जाती है। जिन्होंने तपस्या नहीं की है, वे कभी ब्रह्मलोकमें नहीं जाते। पुरुष जिस किसी कार्यका उद्देश्य लेकर तप करता है, वह सब इस लोक और परलोकमें उसे प्राप्त हो जाता है। शराबी, परस्त्रीगामी, ब्रह्महत्यारा तथा गुरुपत्नीगामी-जैसा पापी भी तपस्याके बलसे सबसे पार हो जाता है—सब पापोंसे छुटकारा पा लेता है।*

---

* सत्यमेव परो मोक्षः सत्यमेव परं श्रुतम्।
सत्यं देवेषु जागर्ति सत्यं च परमं पदम्॥
तपो यज्ञाश्च पुण्यं च तथा देवर्षिपूजनम्।
आद्यो विधिश्च विद्या च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥
सत्यं यज्ञस्तथा दानं मन्त्रा देवी सरस्वती।
व्रतचर्या तथा सत्यमोङ्कारः सत्यमेव च॥
सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः।
सत्येन चाग्निर्दहति स्वर्गः सत्येन तिष्ठति॥
पूजनं सर्वदेवानां सर्वतीर्थावगाहनम्।
सत्यं च वदते लोके सर्वमाप्नोत्यसंशयः॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
सर्वेषां सर्वयज्ञानां सत्यमेव विशिष्यते॥
सत्ये देवाः प्रतीयन्ते पितर ऋषयस्तथा।
सत्यमाहुः परं धर्मं सत्यमाहुः परं पदम्॥
(२८। २०—२६)

* तपो हि परमं प्रोक्तं तपसा विन्दते फलम्।
तपोरता हि ये नित्यं मोदन्ते सह दैवतैः॥
तपसा मोक्षमाप्नोति तपसा विन्दते महत्।
ज्ञानविज्ञानसम्पत्तिः सौभाग्यं रूपमेव च॥
तपसा लभ्यते सर्वं मनसा यद्यदिच्छति।
नातप्ततपसो यान्ति ब्रह्मलोकं कदाचन॥
यत्कार्यं किञ्चिदास्थाय पुरुषस्तप्यते तपः।
तत्सर्वं समवाप्नोति परत्रेह च मानवः॥
सुरापः परदारी च ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
तपसा तरते सर्वं सर्वतश्च विमुच्यते॥
(२८। ३५—३९)

तपस्याके प्रभावसे छियासी हजार ऊर्ध्वरेता मुनि स्वर्गमें रहकर देवताओंके साथ आनन्द भोग रहे हैं। तपस्यासे राज्य प्राप्त होता है। इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवता और असुरोंने तपस्यासे ही सदा सबका पालन किया है। तपस्यासे ही वे वृत्तिदाता हुए हैं। सम्पूर्ण लोकोंके हितमें लगे रहनेवाले दोनों देवता सूर्य और चन्द्रमा तपसे ही प्रकाशित होते हैं। नक्षत्र और ग्रह भी तपस्यासे ही कान्तिमान् हुए हैं। तपस्यासे मनुष्य सब कुछ पा लेता है, सब सुखोंका अनुभव करता है।

मुने! जो जंगलमें फल-मूल खाकर तपस्या करता है तथा जो पहले केवल वेदका अध्ययन ही करता है—वे दोनों समान हैं। वह अध्ययन तपस्याके ही तुल्य है। श्रेष्ठ द्विज वेद पढ़ानेसे जो पुण्य प्राप्त करता है, स्वाध्याय और जपसे इसकी अपेक्षा दूना फल पा जाता है। जो सदा तपस्या करते हुए शास्त्रके अभ्याससे ज्ञानोपार्जन करता है और लोकको उस ज्ञानका बोध कराता है, वह परम पूजनीय गुरु है। पुराणवेत्ता पुरुष दानका सबसे श्रेष्ठ पात्र है। वह पतनसे त्राण करता है, इसलिये पात्र कहलाता है। जो लोग सुपात्रको धन, धान्य, सुवर्ण तथा भाँति-भाँतिके वस्त्र दान करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो श्रेष्ठ पात्रको गौ, भैंस, हाथी और सुन्दर-सुन्दर घोड़े दान करता है, वह सम्पूर्ण लोकोंमें अश्वमेधके अक्षय फलको प्राप्त होता है। जो सुपात्रको जोती-बोयी एवं फलसे भरी हुई सुन्दर भूमि दान करता है, वह अपने दस पीढ़ी पहलेके पूर्वजों और दस पीढ़ी बादतककी संतानोंको तार देता है तथा दिव्य विमानसे विष्णुलोकको जाता है। देवगण पुस्तक बाँचनेसे जितना संतुष्ट होते हैं, उतना संतोष उन्हें यज्ञोंसे, प्रोक्षण (अभिषेक) से तथा फूलोंद्वारा की हुई पूजाओंसे भी नहीं होता। जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमें धर्म-ग्रन्थका पाठ कराता है तथा देवी, शिव, गणेश और सूर्यके मन्दिरमें भी उसकी व्यवस्था करता है, वह मानव राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है। इतिहास-पुराणके ग्रन्थोंका बाँचना पुण्यदायक है। ऐसा करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा अन्तमें सूर्यलोकका भेदन करके ब्रह्मलोकको चला जाता है। वहाँ सौ कल्पोंतक रहनेके पश्चात् इस पृथ्वीपर जन्म ले राजा होता है। एक हजार अश्वमेध यज्ञोंका जो फल बताया गया है, उसे वह मनुष्य भी प्राप्त कर लेता है, जो देवताके आगे महाभारतका पाठ करता है। अतः सब प्रकारका प्रयत्न करके भगवान् विष्णुके मन्दिरमें इतिहास-पुराणके ग्रन्थोंका पाठ करना चाहिये, वह शुभकारक होता है। विष्णु तथा अन्य देवताओंके लिये दूसरा कोई साधन इतना प्रीतिकारक नहीं है।

मन्दिरमें पुराणकी कथा कराने और सुपात्रको दान देनेसे होनेवाली सद्गतिके विषयमें एक आख्यान तथा गोपीचन्दनके तिलककी महिमा

महादेवजी कहते हैं—नारद! इस विषयमें विज्ञ पुरुष एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। यह इतिहास अत्यन्त पुरातन, पुण्यदायक, सब पापोंको हरनेवाला तथा शुभ-कारक है। देवर्षे! ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारने लोकपितामह ब्रह्माजीको नमस्कार करके मुझे यह उपाख्यान सुनाया था।

सनत्कुमार बोले—एक दिन मैं धर्मराजसे मिलने गया था। वहाँ उन्होंने बड़ी प्रसन्नता और भक्तिके साथ नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा मेरा सत्कार किया। तत्पश्चात् मुझे सुखमय आसनपर बैठनेके लिये कहा। बैठनेपर मैंने वहाँ एक अद्भुत बात देखी। एक पुरुष सोनेके विमानपर बैठकर वहाँ आया। उसे देखकर धर्मराज बड़े वेगसे आसन-से उठ खड़े हुए और आगन्तुकका दाहिना हाथ पकड़कर उन्होंने अर्घ्य आदिके द्वारा उसका पूर्ण सत्कार किया। तत्पश्चात् वे उससे इस प्रकार बोले।
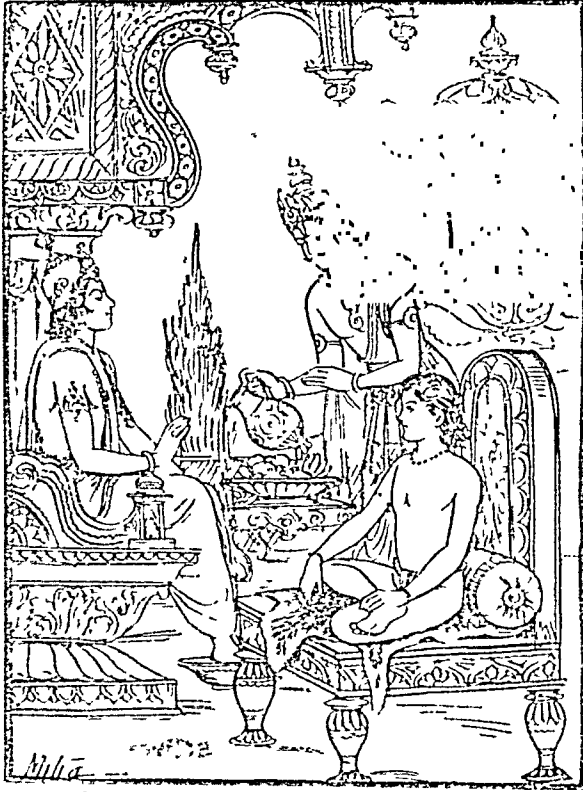
धर्मने कहा—धर्मके द्रष्टा महापुरुष ! तुम्हारा स्वागत है ! मैं तुम्हारे दर्शनसे बहुत प्रसन्न हूँ । मेरे पास बैठो और मुझे कुछ ज्ञानकी बातें सुनाओ । इसके बाद उस धाममें जाना, जहाँ श्रीब्रह्माजी विराजमान हैं ।

सनत्कुमार कहते हैं—धर्मराजके इतना कहते ही एक दूसरा पुरुष उत्तम विमानपर बैठा हुआ वहाँ आ पहुँचा । धर्मराजने विनीत भावसे उसका भी विमानपर ही पूजन किया तथा जिस प्रकार पहले आये हुए मनुष्यसे सान्त्वनापूर्वक वार्तालाप किया था, उसी प्रकार इस नवागन्तुकके साथ भी किया । यह देखकर मुझे बड़ा विसय हुआ । मैंने धर्मसे पूछा—'इन्होंने कौन-सा ऐसा कर्म किया है, जिसके ऊपर आप अधिक संतुष्ट हुए हैं ? इन दोनोंके द्वारा ऐसा कौन-सा कर्म बन गया है, जिसका इतना उत्तम पुण्य है ? आप सर्वज्ञ हैं, अतः बताइये किस कर्मके प्रभावसे इन्हें दिव्य फलकी प्राप्ति हुई है ?' मेरी बात सुनकर धर्मराजने कहा—'इन दोनोंका किया हुआ कर्म बताता हूँ, सुनो । पृथ्वीपर वैदिश नामका एक विख्यात नगर है । वहाँ धरापाल नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, जिन्होंने भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवाकर उसमें उनकी स्थापना की । उस नगरमें जितने लोग रहते थे, उन सबको उन्होंने भगवान्‌का दर्शन करनेके लिये आदेश दिया । गाँवके भीतर बना हुआ श्रीविष्णुका वह सुन्दर मन्दिर लोगोंसे ठसाठस भर गया । तब राजाने पहले ब्राह्मण आदिके समुदायका पूजन किया, फिर उन महाबुद्धिमान् नरेशने इतिहास-पुराणके ज्ञाता एक श्रेष्ठ द्विजको, जो विद्यामें भी श्रेष्ठ थे, वाचक बनाकर उनकी विशेष रूपसे पूजा की । फिर क्रमशः गन्ध-पुष्प आदि उपचारोंसे पुस्तकका भी पूजन करके राजाने वाचक ब्राह्मणसे विनयपूर्वक कहा—'द्विजश्रेष्ठ ! मैंने जो यह भगवान् विष्णुका

मन्दिर बनवाया है, इसमें धर्म श्रवण करनेकी इच्छासे चारों वर्णोंका समुदाय एकत्रित हुआ है; अतः आप पुस्तक बाँचिये । इस समय ये सौ स्वर्णमुद्राएँ उत्तम जीविका-वृत्तिके रूपमें ग्रहण कीजिये और एक वर्षतक प्रतिदिन कथा कहिये । वर्ष समाप्त होनेपर पुनः और धन दूँगा ।'

मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार राजाके आदेशसे वहाँ पुण्यमय कथा-वार्ताका क्रम चालू हो गया । वर्ष बीतते-बीतते आयु क्षीण हो जानेके कारण राजाकी मृत्यु हो गयी । तब मैंने तथा भगवान् विष्णुने भी इनके लिये द्युलोकसे विमान भेजा था । ये जो दूसरे ब्राह्मण यहाँ आये थे, इन्होंने सत्सङ्गके द्वारा उत्तम धर्मका श्रवण किया था । श्रवण करनेसे श्रद्धावश इनके हृदयमें परमात्माकी भक्तिका उदय हुआ । मुनिश्रेष्ठ !

फिर इन्होंने उन महात्मा वाचककी परिक्रमा की और उन्हें एक माशा सुवर्ण दान दिया। सुपात्रको दान देनेसे इन्हें इस प्रकारके फलकी प्राप्ति हुई है। मुने! इस प्रकार यह कर्म, जिसे इन दोनोंने किया था, मैंने कह सुनाया।

महादेवजी कहते हैं—जो मनीषी पुरुष इस पुण्य-प्रसङ्गका माहात्म्य श्रवण करते हैं, उनकी किसी जन्ममें कभी दुर्गति नहीं होती। देवर्षिप्रवर! अब दूसरी बात सुनाता हूँ, सुनो। गोपीचन्दनका माहात्म्य जैसा मैंने देखा और सुना है, उसका वर्णन करता हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—कोई भी क्यों न हो, जो विष्णुका भक्त होकर उनके भजनमें तत्पर रहकर अपने अङ्गोंमें गोपीचन्दन लगाता है, वह गङ्गाजलसे नहाये हुएकी भाँति सब दोषोंसे मुक्त हो जाता है। कल्याणकी इच्छा रखनेवाले वैष्णव ब्राह्मणोंके लिये गोपीचन्दनका तिलक धारण करना विशेष रूपसे कर्तव्य है। ललाटमें दण्डके आकारका, वक्षःस्थलमें कमलके सदृश, बाहुओंके मूलभागमें बाँसके पत्तेके समान तथा अन्यत्र दीपकके तुल्य चन्दन लगाना चाहिये। अथवा जैसी रुचि हो, उसीके अनुसार भिन्न-भिन्न अङ्गोंमें चन्दन लगाये, इसके लिये कोई खास नियम नहीं है। गोपी-चन्दनका तिलक धारण करने मात्रसे ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालतक सभी मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं। जो वैष्णव ब्राह्मण भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर हो, उसमें तथा विष्णु-में भेद नहीं मानना चाहिये; वह इस लोकमें श्रीविष्णुका ही स्वरूप होता है।

तुलसीके पत्र अथवा काष्ठकी बनी हुई माला धारण करनेसे ब्राह्मण निश्चय ही मुक्तिका भागी होता है।* मृत्युके समय भी जिसके ललाटपर गोपीचन्दनका तिलक रहता है, वह विमानपर आरूढ हो विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। नारद! कलियुगमें जो नरश्रेष्ठ गोपीचन्दनका तिलक धारण करते हैं, उनकी कभी दुर्गति नहीं होती। ब्रह्मन्! इस पृथ्वीपर जो शराबी, स्त्री और बालकोंकी हत्या करनेवाले तथा अगम्या स्त्रीके साथ समागम करनेवाले देखे जाते हैं, वे भगवद्भक्तोंके दर्शनमात्रसे पापमुक्त हो जाते हैं। मैं भी भगवान् विष्णुकी भक्तिके प्रसादसे वैष्णव हुआ हूँ।

संवत्सरदीप व्रतकी विधि और महिमा

नारदजी बोले—भगवन्! अब मुझे सब व्रतोंमें प्रधान 'संवत्सरदीप' नामक व्रतकी उत्तम विधि बताइये, जिसके करनेसे सब व्रतोंके अनुष्ठानका फल निस्संदेह प्राप्त हो जाय, सब कामनाओंकी सिद्धि हो तथा सब पापोंका नाश हो जाय।

महादेवजीने कहा—देवर्षे! मैं तुम्हें एक पापनाशक रहस्य बताता हूँ, जिसे सुनकर ब्रह्महत्यारा, गोघाती, मित्रहन्ता, गुरुस्त्रीगामी, विश्वासघाती तथा क्रूर हृदयवाला मनुष्य भी शाश्वत मोक्षको प्राप्त होता है तथा अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार करके विष्णुलोकको जाता है। वह रहस्य संवत्सरदीपव्रत है, जो बहुत ही श्रेयस्कर व्रत है। मैं उसकी विधि और महिमाका वर्णन करूँगा। हेमन्त ऋतुके प्रथम मास—अगहनमें शुभ एकादशी तिथि आनेपर ब्राह्ममुहूर्तमें उठे और काम-क्रोधसे रहित हो नदीके संगम, तीर्थ, पोखरे या नदीमें जाकर स्नान करे अथवा मनको वशमें रखते हुए घरपर ही स्नान करे। स्नान करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु गर्ते प्रस्रवणेषु च।
नदीषु सर्वतीर्थेषु तत्स्नानं देहि मे सदा॥

'मैं सम्पूर्ण तीर्थों, कुण्डों, झरनों तथा नदियोंमें स्नान कर चुका। जल! तुम मुझे उन सबमें सदा स्नान करनेका फल प्रदान करो।'

तदनन्तर देवताओं और पितरोंका तर्पण करके जप करनेके अनन्तर जितेन्द्रिय पुरुष देवदेव भगवान् लक्ष्मी-नारायणका पूजन करे। पहले पञ्चामृतसे नहलाकर फिर चन्दनयुक्त जलसे स्नान कराये। तत्पश्चात् इस प्रकार कहे—

स्नातोऽसि लक्ष्म्या सहितो देवदेव जगत्पते।
मां समुद्धर देवेश घोरात् संसारबन्धनात्॥

'देवदेव! जगत्पते! देवेश्वर! आप लक्ष्मीजीके साथ स्नान कर चुके हैं;इस घोर संसार-बन्धनसे मेरा उद्धार कीजिये।'

इसके बाद वैदिक तथा पौराणिक मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक

* तुलसीपत्रमालां च तुलसीकाष्ठसंभवाम्। धृत्वा वै ब्राह्मणो भूयान्मुक्तिभागी न संशयः॥ (१०।१९)

लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुका पूजन करे। 'अतो देव' इस सूक्तसे अथवा पुरुषसूक्तसे पूजा करनी चाहिये। अथवा—

नमो मत्स्याय देवाय कूर्मदेवाय वै नमः।
नमो वाराहदेवाय नरसिंहाय वै नमः॥
वामनाय नमस्तुभ्यं परशुरामाय ते नमः।
नमोऽस्तु रामदेवाय विष्णुदेवाय ते नमः॥
नमोऽस्तु बुद्धदेवाय कल्किने च नमो नमः।
नमः सर्वात्मने तुभ्यं शिरसेत्यभिपूजयेत्॥

'मत्स्य, कच्छप, वाराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्की—ये दस अवतार धारण करनेवाले आप सर्वात्माको मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।' यों कहकर पूजन करे।

अथवा भगवान्‌के जो 'केशव' आदि प्रसिद्ध नाम हैं, उनके द्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये।

धूपका मन्त्र

वनस्पतिरसो दिव्यः सुरभिर्गन्धवाञ्छुचिः।
धूपोऽयं देवदेवेश नमस्ते प्रतिगृह्यताम्॥

'देवदेवेश्वर! मनोहर सुगन्धसे भरा यह परम पवित्र दिव्य वनस्पतिका रसरूप धूप आपकी सेवामें प्रस्तुत है; आपको नमस्कार है, आप इसे स्वीकार करें।'

दीपका मन्त्र

दीपस्तमो नाशयति दीपः कान्तिं प्रयच्छति।
तस्माद्दीपप्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः॥

'दीप अन्धकारका नाश करता है, दीप कान्ति प्रदान करता है; अतः दीपदानसे भगवान् जनार्दन मुझपर प्रसन्न हों।'

नैवेद्य-मन्त्र

नैवेद्यमिदमन्नाद्यं देवदेव जगत्पते।
लक्ष्म्या सह गृहाण त्वं परमामृतमुत्तमम्॥

'देवदेव! यह अन्न आदिका बना हुआ नैवेद्य सेवामें प्रस्तुत है; जगदीश्वर! आप लक्ष्मीजीके साथ इस परम अमृतरूप उत्तम नैवेद्यको ग्रहण कीजिये।'

तदनन्तर श्रीजनार्दनका ध्यान करके शङ्खमें जल और हाथमें फल लेकर भक्तिपूर्वक अर्घ्य निवेदन करे; अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

जन्मान्तरसहस्रेण यन्मया पातकं कृतम्।
तत्सर्वं नाशमायातु प्रसादात्तव केशव॥

'केशव! हजारों जन्मोंमें मैंने जो पातक किये हैं, वे सब आपकी कृपासे नष्ट हो जायँ।'

इसके बाद घी अथवा तेलसे भरा हुआ एक सुन्दर नवीन कलश ले आकर भगवान् लक्ष्मीनारायणके सामने स्थापित करे। कलशके ऊपर ताँबे या मिट्टीका पात्र रखे। उसमें नौ तन्तुओंके समान मोटी बत्ती डाल दे तथा कलशको स्थिरतापूर्वक स्थापित करके वहाँ वायुरहित गृहमें दीपक जलाये। देवर्षे! फिर पवित्रतापूर्वक पुष्प और गन्ध आदिसे कलशकी पूजा करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे शुभ संकल्प करे—

कामो भूतस्य भव्यस्य सम्राडेको विराजते।
दीपः संवत्सरं यावन्मयायं परिकल्पितः।
अग्निहोत्रमविच्छिन्नं प्रीयतां मम केशवः॥

'भूत और भविष्यके सम्राट् तथा सबकी कामनाके विषय एक—अद्वितीय परमात्मा सर्वत्र विराजमान हैं। मैंने एक वर्षतक प्रज्वलित रखनेके लिये इस दीपककी स्थापना की है; यह अखण्ड अग्निहोत्ररूप है। इससे भगवान् केशव मुझपर प्रसन्न हों।'

तत्पश्चात् इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए वेदोंके स्वाध्याय तथा ज्ञानयोगमें तत्पर रहे। पतितों, पापियों और पाखण्डी मनुष्योंसे बातचीत न करे। रातको गीत, नृत्य, बाजे आदिसे, पुण्य-ग्रन्थोंके पाठसे तथा भाँति-भाँतिके धार्मिक उपाख्यानोंसे मन बहलाते हुए उपवासपूर्वक जागरण करे। इसके बाद सबेरा होनेपर पूर्वाह्णके नित्य-कर्मोंका अनुष्ठान करके भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा अपनी शक्तिके अनुसार उनकी पूजा करे। फिर स्वयं भी पारण करके ब्राह्मणोंको प्रणाम कर विदा करे। इस प्रकार दृढ संकल्प करके एक वर्षतक दिन-रात उक्त नियमसे रहे। एक या आधे पल सोनेका दीपक बनाये; उसके लिये बत्ती चाँदीकी बतायी गयी है, जो दो या ढाई पलकी होनी चाहिये। घीसे भरा हुआ घड़ा हो तथा उसके ऊपर ताँबेका पात्र रखा रहे। मुक्तिकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको भक्तिपूर्वक भगवान् लक्ष्मीनारायणकी प्रतिमा भी यथाशक्ति सोनेकी बनवानी चाहिये। इसके बाद [वर्ष पूर्ण होनेपर] विद्वान् पुरुष साधु एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। बारह ब्राह्मण हों—यह उत्तम पक्ष है। छः ब्राह्मणोंका होना मध्यम पक्ष है। इतना भी न हो सके तो

तीन ब्राह्मणोंको ही निमन्त्रित करे। इनमेंसे एक कर्मनिष्ठ एवं सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करे। वह ब्राह्मण शान्त होनेके साथ ही विशेषतः क्रियावान् हो। इतिहास-पुराणोंका ज्ञाता, धर्मज्ञ, मृदुल स्वभावका, पितृभक्त, गुरुसेवापरायण तथा देवता-ब्राह्मणोंका पूजन करनेवाला हो। पाद्य-अर्घ्यदान आदिकी विधिसे वस्त्र, अलंकार तथा आभूषण अर्पण करते हुए पत्नीसहित ब्राह्मणदेवकी भक्तिपूर्वक पूजा करके भगवान् लक्ष्मीनारायणको तथा वत्तीसहित दीपकको भी ताम्रपात्रमें रखकर घीसे भरे हुए घड़ेके साथ ही उस ब्राह्मणको दान कर दे। देवर्षे! उस समय निम्नाङ्कित मन्त्रसे परम पुरुष नारायणदेवका ध्यान भी करता रहे—

अविद्यातमसा व्याप्ते संसारे पापनाशनः।
ज्ञानप्रदो मोक्षदश्च तस्मात्त्वत्तो मयानघ॥

'पापरहित नारायण तथा ज्योतिर्मय दीप! अविद्यामय अन्धकारसे भरे हुए संसारमें तुम्हीं ज्ञान एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले हो; इसलिये मैंने आज तुम्हारा दान किया है।'

फिर पूजित ब्राह्मणको अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक दक्षिणा दे। अन्यान्य ब्राह्मणोंको भी घृतयुक्त खीर तथा मिठाईका भोजन कराये। ब्राह्मणभोजनके अनन्तर सपत्नीक ब्राह्मणको वस्त्र पहनाये। सामग्रियोंसहित शय्या तथा बछड़ेसहित धेनु दान करे। अन्य ब्राह्मणोंको भी अपनी सामर्थ्यके अनुसार दक्षिणा दे। सुहृदों, स्वजनों तथा बन्धु-बान्धवोंको भी भोजन कराये और उनका सत्कार करे। इस प्रकार इस संवत्सरदीप व्रतकी समाप्तिके अवसरपर महान् उत्सव करे। फिर सबको प्रणाम करके विदा करे और अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमा माँगे।

दान, व्रत, यज्ञ तथा योगाभ्याससे मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वही फल उसे संवत्सरदीप व्रतके पालनसे मिलता है। गौ, भूमि, सुवर्ण तथा विशेषतः गृह आदिके दानसे विद्वान् पुरुष जिस फलको पाता है, वही दीपव्रतसे भी प्राप्त होता है। दीपदान करनेवाला पुरुष कान्ति, अक्षय धन, ज्ञान तथा परम सुख पाता है। दीपदान करनेसे मनुष्यको सौभाग्य, अत्यन्त निर्मल विद्या, आरोग्य तथा परम उत्तम समृद्धिकी प्राप्ति होती है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। दीपदान करनेवाला मानव समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त सौभाग्यवती पत्नी, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र तथा अक्षय संतति प्राप्त करता है। दीपदानके प्रभावसे ब्राह्मणको परम ज्ञान, क्षत्रियको उत्तम राज्य, वैश्यको धन और समस्त पशु तथा शूद्रको सुखकी प्राप्ति होती है। कुमारी कन्याको सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त पति मिलता है। वह बहुत-से पुत्र-पौत्र तथा बड़ी आयु पाती है। युवती स्त्री इस व्रतके प्रभावसे कभी वैधव्यका दुःख नहीं देखती। उसका अपने स्वामीसे कभी वियोग नहीं होता। दीपदानसे मानसिक चिन्ता तथा रोग भी दूर होते हैं। भयभीत पुरुष भयसे तथा कैदी बन्धनसे छूट जाता है। दीपव्रतमें तत्पर रहनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे निःसन्देह मुक्त हो जाता है—ऐसा ब्रह्माजीका वचन है।

जिसने श्रीहरिके संमुख सांवत्सर दीप जलाया है, उसने निश्चय ही चान्द्रायण तथा कृच्छ्र व्रतोंका अनुष्ठान पूरा कर लिया। जिन्होंने भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी पूजा करके संवत्सरदीप व्रतका पालन किया है, वे धन्य हैं। तथा उन्होंने जन्म लेनेका फल पा लिया। जो सलाईसे दीपकी वत्तीको उकसा देते हैं, वे भी देवदुर्लभ परमपदको प्राप्त होते हैं। जो लोग सदा ही मन्दिरके दीपमें यथाशक्ति तेल और वत्ती डालते हैं, वे परम धामको जाते हैं। जो लोग बुझते या बुझे हुए दीपको स्वयं जलानेमें असमर्थ होनेपर दूसरे लोगोंसे उसकी सूचना दे देते हैं, वे भी उक्त फलके भागी होते हैं। जो दीपकके लिये थोड़े-थोड़े तेलकी भीख माँगकर श्रीविष्णुके संमुख दीप जलाता है, उसे भी पुण्यकी प्राप्ति होती है। दीपक जलाते समय यदि कोई नीच पुरुष भी उसकी ओर श्रद्धासे हाथ जोड़कर निहारता है, तो वह विष्णुधाममें जाता है। जो दूसरोंको भगवान्‌के सामने दीप जलानेकी सलाह देता है तथा स्वयं भी ऐसा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है।

जो लोग पृथ्वीपर दीपव्रतके इस माहात्म्यको सुनते हैं, वे सब पापोंसे छुटकारा पाकर श्रीविष्णुधामको जाते हैं। विद्वन्! मैंने तुमसे यह दीपव्रतका वर्णन किया है। यह मोक्ष तथा सब प्रकारका सुख देनेवाला, प्रशस्त एवं महान् व्रत है। इसके अनुष्ठानसे पापके प्रभावसे होनेवाले नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं। मानसिक चिन्ताओं तथा व्याधियोंका क्षणभरमें नाश हो जाता है। नारद! इस व्रतके प्रभावसे दारिद्र्य और शोक नहीं होता। मोह और भ्रान्ति मिट जाती है।

जयन्ती संज्ञावाली जन्माष्टमीके व्रत तथा विविध प्रकारके दान आदिकी महिमा

नारदजी बोले—देवदेव ! जगदीश्वर ! भक्तोंको अभयदान देनेवाले महादेव ! मुझपर कृपा करके कोई दूसरा व्रत बताइये ।

महादेवजीने कहा—पूर्वकालमें हरिश्चन्द्र नामक एक चक्रवर्ती राजा हो गये हैं । उनपर संतुष्ट होकर ब्रह्माजीने उन्हें एक सुन्दर पुरी प्रदान की, जो समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली थी । उसमें रहकर राजा हरिश्चन्द्र सात द्वीपोंसे युक्त वसुन्धराका धर्मपूर्वक पालन करते थे । प्रजाको वे औरस पुत्रकी भाँति मानते थे । राजाके पास धन-धान्यकी अधिकता थी । उन्हें नाती-पोतोंकी भी कमी न थी । अपने उत्तम राज्यका पालन करते हुए राजाको एक दिन बड़ा विस्मय हुआ । वे सोचने लगे—'आजके पहले कभी किसीको ऐसा राज्य नहीं मिला था । मेरे सिवा दूसरे मनुष्योंने ऐसे विमानपर सवारी नहीं की होगी । यह मेरे किस कर्मका फल है, जिससे मैं देवराज इन्द्रके समान सुखी हूँ !'

राजाओंमें श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र इस प्रकार सोच-विचारकर अपने उत्तम विमानपर आरूढ हुए । आकाशमार्गसे जाते समय पर्वतोंमें श्रेष्ठ मेरुपर उनकी दृष्टि पड़ी । उस श्रेष्ठ शैलपर ज्ञानयोग-परायण ब्रह्मर्षि सनत्कुमार दिखायी पड़े, जो सुवर्णमयी शिलाके ऊपर विराजमान थे । उन्हें देखकर राजा अपना विस्मय पूछनेके लिये उतर पड़े । उन्होंने पास जा हर्षमें भरकर मुनिके चरणोंमें मस्तक झुकाया । ब्रह्मर्षिने भी राजाका अभिनन्दन किया । फिर सुखपूर्वक बैठकर राजाने मुनिश्रेष्ठ सनत्कुमारजीसे पूछा—'भगवन् ! मुझे जो यह सम्पत्ति प्राप्त हुई है, मानवलोकमें प्रायः दुर्लभ है ।

ऐसी सम्पत्ति किस कर्मसे प्राप्त होती है ? मैं पूर्वजन्ममें कौन था ? ये सब बातें यथार्थरूपसे बतलाइये ।'

सनत्कुमारजी बोले—राजन् ! सुनो—तुम पूर्वजन्ममें सत्यवादी, पवित्र एवं उत्तम वैश्य थे । तुमने अपना काम-धाम छोड़ दिया था, इसलिये बन्धु-बान्धवोंने तुम्हारा परित्याग कर दिया । तुम्हारे पास जीविकाका कोई साधन नहीं रह गया था; इसलिये तुम स्वजनोंको छोड़कर चल दिये । स्त्रीने भी तुम्हारा साथ दिया । एक समय तुम दोनों किसी घने जङ्गलमें जा पहुँचे । वहाँ एक पोखरेमें कमल खिले हुए थे । उन्हें देखकर तुम दोनोंके मनमें यह विचार उठा कि हम यहाँसे कमल ले लें । कमल लेकर तुम दोनों एक-एक पग भूमि लाँघते हुए शुभ एवं पुण्यमयी वाराणसी पुरीमें पहुँचे । वहाँ तुमलोग कमल बेचने लगे,

किन्तु कोई भी उन्हें खरीदता नहीं था । वहीं खड़े-खड़े तुम्हारे कानोंमें बाजेकी आवाज सुनायी पड़ी । फिर तुम उसी ओर चल दिये । वहाँ काशीके विख्यात राजा इन्द्रद्युम्न-

की सती-साध्वी कन्या चन्द्रावतीने, जो बड़ी सौभाग्यशालिनी थी, जयन्ती नामक जन्माष्टमीका शुभकारक व्रत किया था । उस स्थानपर तुम बड़े हर्षके साथ गये । वहाँ पहुँचनेपर तुम्हारा चित्त संतुष्ट हो गया । तुमने वहाँ भगवान्‌के पूजनका विधान देखा । कलशके ऊपर श्रीहरिकी स्थापना करके उनकी पूजा हो रही थी । विशेष समारोहके साथ भगवान्‌का पूजन किया गया था, भिन्न-भिन्न पुष्पोंसे उनका शृङ्गार हुआ था । भगवान्‌की भक्तिके वशीभूत हो तुमने भी अपनी पत्नीके साथ कमलके फूलोंसे वहाँ श्रीहरिका पूजन किया तथा पूजासे बचे हुए फूलोंको उनके समीप ही बिखेर दिया । तुमने भगवान्‌को पुष्पमय कर दिया । इससे उस कन्याको बड़ा संतोष हुआ । वह स्वयं तुम्हें धन देने लगी, किन्तु तुमने नहीं लिया । तब राजकुमारीने तुम्हें भोजनके लिये निमन्त्रित किया; किन्तु उस समय तुमने न तो भोजन स्वीकार किया और न धन ही लिया । यही पुण्य तुमने पिछले जन्ममें उपार्जित किया था । फिर अपने कर्मके अनुसार तुम्हारी मृत्यु हो गयी । उसी महान् पुण्यके प्रभावसे तुम्हें विमान मिला है । राजन् ! पूर्वजन्ममें जो तुम्हारे द्वारा वह पुण्य हुआ था, उसीका फल इस समय तुम भोग रहे हो ।

हरिश्चन्द्र बोले—मुनिवर ! किस महीनेमें वह तिथि आती है और किस विधिसे उसका व्रत करना चाहिये ? यह मुझे बताइये ।

सनत्कुमारजीने कहा—राजन् ! मैं तुम्हें इस व्रतको बताता हूँ; सावधान होकर सुनो । श्रावण[1]मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको यदि रोहिणी नक्षत्रका योग मिल जाय तो उस जन्माष्टमीका नाम 'जयन्ती' होता है । अब मैं इसकी विधिका वर्णन करता हूँ, जैसा कि ब्रह्माजीने मुझे बताया था । उस दिन उपवासका व्रत लेकर काले तिलोंसे मिश्रित जलसे स्नान करे । फिर नवीन कलशकी, जो फूटा-टूटा न हो, स्थापना करे । उसमें पञ्चरत्न डाल दे । हीरा, मोती, वैदूर्य, पुष्पराग (पुखराज) और इन्द्रनील—ये उत्तम पञ्चरत्न हैं—ऐसा कात्यायनका कथन है ।* कलशके ऊपर सोनेका पात्र रखे और सोनेकी बनी हुई नन्दरानी यशोदाकी प्रतिमा स्थापित करे । प्रतिमाका भाव यह होना चाहिये—'यशोदा अपने पुत्र श्रीकृष्णको स्तन पिलाती हुई मन्द-मन्द मुसकरा रही हैं, श्रीकृष्ण यशोदा मैयाका एक स्तन तो पी रहे हैं और दूसरा स्तन दूसरे हाथसे पकड़े हुए हैं । वे माताकी ओर प्रेमसे देखकर उन्हें सुख पहुँचा रहे हैं ।' इस प्रकार जैसी अपनी शक्ति हो, उसीके अनुसार सुवर्णमय भगवत्प्रतिमाका निर्माण कराये । इसके सिवा सोनेकी रोहिणी और चाँदीके चन्द्रमाकी प्रतिमा बनवाये । अँगूठेके बराबर चन्द्रमा हों और चार अंगुलकी रोहिणी । भगवान्‌के कानोंमें कुण्डल और गलेमें कण्ठा पहनाये । इस प्रकार माताके साथ जगत्पति गोविन्दकी प्रतिमा बनवाकर दूध आदिसे स्नान कराये तथा चन्दनसे अनुलेप करे । दो श्वेत वस्त्रोंसे भगवान्‌को आच्छादित करके फूलोंकी मालासे उनका शृङ्गार करे । भाँति-भाँतिके

१—यहाँ श्रावणका अर्थ भाद्रपद समझना चाहिये । जहाँ शुक्लपक्षसे मासका आरम्भ होता है; वहाँ भाद्रपदका कृष्णपक्ष श्रावणका कृष्णपक्ष समझा जाता है । इन प्रान्तोंमें कृष्णपक्षसे ही महीना आरम्भ होता है ।

* वज्रमौक्तिकवैदूर्यपुष्परागेन्द्रनीलकम् ।
पञ्चरत्नं प्रशस्तं तु इति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥

(३२ । ३८)

भक्ष्य पदार्थोंका नैवेद्य लगाये, नाना प्रकारके फल अर्पण करे। दीप जलाकर रखे और फूलोंके मण्डपसे पूजास्थानको सुशोभित करे। विज्ञ पुरुषोंके द्वारा भक्तिपूर्वक नृत्य, गीत और वाद्य कराये। इस प्रकार अपने वैभवके अनुसार सब विधान पूर्ण करके गुरुका पूजन करे, तत्पश्चात् पूजाकी समाप्ति करे।

महादेवजी कहते हैं—जब इन्द्रके सौ यज्ञ पूर्ण हो गये और उत्तम दक्षिणा देकर यज्ञका कार्य समाप्त कर दिया गया, उस समय देवराजके मनमें कुछ पूछनेका संकल्प हुआ; अतएव उन्होंने अपने गुरु बृहस्पतिजीसे इस प्रकार प्रश्न किया।

इन्द्र बोले—भगवन्! किस दानसे सब ओर सुखकी वृद्धि होती है? जो अक्षय तथा महान् अर्थका साधक हो, उसका वर्णन कीजिये।

बृहस्पतिजीने कहा—इन्द्र! सोना, वस्त्र, गौ तथा भूमि—इनका दान करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो भूमिका दान करता है, उसके द्वारा सोने, चाँदी, वस्त्र, मणि एवं रत्नका भी दान हो जाता है। जो फालसे जोती हो, जिसमें बीज बो दिया गया हो तथा जहाँ खेती लहरा रही हो, ऐसी भूमिका दान करके मनुष्य तबतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है, जबतक सूर्यका प्रकाश बना रहता है। जीविकाके कष्टसे मनुष्य जो कुछ भी पाप करता है, वह गोचर्ममात्र भूमिके दानसे छूट जाता है। दस हाथका एक दण्ड होता है, तीस दण्डका एक वर्तन होता है और दस वर्तनका एक गोचर्म होता है; यही ब्रह्म-गोचर्मकी भी परिभाषा है। छोटे बछड़ोंको जन्म देनेवाली एक हजार गौएँ जहाँ साँड़ोंके साथ खड़ी हो सकें, उतनी भूमिको एक गोचर्म माना गया है। गुणवान्, तपस्वी तथा जितेन्द्रिय ब्राह्मणको दान देना चाहिये। उस दानका अक्षय फल तबतक मिलता रहता है, जबतक यह समुद्रपर्यन्त पृथ्वी कायम रहती है। इन्द्र! जैसे तेलकी बूँद कहीं गिरनेपर शीघ्र ही फैल जाती है, उसी प्रकार खेतीके साथ किया हुआ भूमिदान विशेष विस्तारको प्राप्त होता है। गौ, भूमि और विद्या—इन तीन वस्तुओंके दानको अतिदान बताया गया है; ये क्रमशः दुहने, बोने तथा अभ्यास करनेसे नरकसे उद्धार कर देती हैं।*

वस्त्रदान करनेवाले पुरुष परलोकके मार्गपर वस्त्रोंसे आच्छादित होकर यात्रा करते हैं और जिन्होंने वस्त्रदान नहीं किया है, उन्हें नंगे ही जाना पड़ता है। अन्नदान करनेवाले लोग तृप्त होकर जाते हैं; जो अन्नदान नहीं करते, उन्हें भूखे ही यात्रा करनी पड़ती है। नरकके भयसे डरे हुए सभी पितर इस बातकी अभिलाषा करते हैं कि हमारे पुत्रोंमेंसे जो कोई गया जायगा, वह हमें तारनेवाला होगा। बहुत-से पुत्रोंकी इच्छा करनी चाहिये; क्योंकि उनमेंसे एक भी तो गया जायगा अथवा नील वृषका उत्सर्ग करेगा। जो रंगसे लाल हो, जिसकी पूँछके अग्रभागमें कुछ पीलापन लिये सफेदी हो और खुर तथा सींगोंका विशुद्ध श्वेत वर्ण हो, वह 'नील वृष' कहलाता है।* पाण्डु रंगकी पूँछवाला नील वृष जो जल उछालता है, उससे साठ हजार वर्षोंतक पितर तृप्त रहते हैं। जिसके सींगमें नदीके किनारेकी उखाड़ी हुई मिट्टी लगी होती है, उसके दानसे पितरगण परम प्रकाशमय चन्द्रलोकका सुख भोगते हैं।

यह पृथ्वी पूर्वकालमें राजा दिलीप, नृग, नहुष तथा अन्यान्य नरेशोंके अधीन थी और पुनः अन्यान्य राजाओंके अधिकारमें जाती रहेगी। सगर आदि बहुत-से राजा इस पृथ्वीका दान कर चुके हैं। यह जब जिसके अधिकारमें रहती है, तब उसीको इसके दानका फल मिलता है। जो अपनी या दूसरेकी दी हुई पृथ्वीको हर लेता है; वह विष्ठाका कीड़ा होकर पितरोंसहित नरकमें पकाया जाता है। भूमिदान करनेवालेसे बढ़कर पुण्यवान् तथा भूमि हर लेनेवालेसे बढ़कर पापी दूसरा कोई नहीं है। जबतक महाप्रलय नहीं हो जाता, तबतक भूमिदाता ऊर्ध्वलोकमें और भूमिहर्ता नरकमें रहता है। सुवर्ण अग्निकी प्रथम संतान है, पृथ्वी विष्णुके अंशसे प्रकट हुई है तथा गौएँ सूर्यकी कन्याएँ हैं। इसलिये जो सुवर्ण, गौ तथा पृथ्वीका दान करता है, वह उनके दानका अक्षय फल भोगता है। जो भूमिको न्यायपूर्वक देता और जो न्यायपूर्वक ग्रहण करता है, वे दोनों ही पुण्यकर्मा हैं; उन्हें निश्चय ही स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जिन लोगोंने अन्यायपूर्वक पृथ्वीका अपहरण किया अथवा कराया है, वे दोनों ही प्रकारके मनुष्य अपनी सात पीढ़ियोंका विनाश करते हैं—उन्हें सद्गतिसे वंचित कर देते हैं।

---

* त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती।
नरकादुद्धरन्त्येते जपवापनदोहनात्॥
(३३। १८)

* लोहितो यस्तु वर्णेन पुच्छाग्रे यस्तु पाण्डुरः।
श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते॥
(३३। २२-२३)

ब्राह्मणका खेत हर लेनेपर कुलकी तीन पीढ़ियोंका नाश हो जाता है। एक हजार कूप और बावली बनवानेसे, सौ अश्वमेध करनेसे तथा करोड़ों गौएँ देनेसे भी भूमिहर्ताकी शुद्धि नहीं होती।

किया हुआ शुभ कर्म, दान, तप, स्वाध्याय तथा जो कुछ भी धर्मसम्बन्धी कार्य है, वह सब खेतकी आधी अंगुल सीमा हर लेनेसे भी नष्ट हो जाता है। गोतीर्थ (गौओंके चरने और पानी पीने आदिका स्थान), गाँवकी सड़क, मरघट तथा गाँवको दबाकर मनुष्य प्रलयकालतक नरकमें पड़ा रहता है।* यदि जीविकाके बिना प्राण कण्ठतक आ जायँ तो भी ब्राह्मणके धनका लोभ नहीं करना चाहिये। अग्निकी आँच और सूर्यके तापसे जले हुए वृक्ष आदि पुनः पनपते हैं, राजदण्डसे दण्डित मनुष्योंकी अवस्था भी पुनः सुधर जाती है; किन्तु जिनपर ब्राह्मणोंके शापका प्रहार होता है, वे तो नष्ट ही हो जाते हैं। ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेवाला मनुष्य रौरव नरकमें पड़ता है। केवल विषको ही विष नहीं कहते, ब्राह्मणका धन सबसे बड़ा विष कहा जाता है। साधारण विष तो एकको ही मारता है, किन्तु ब्राह्मणका धनरूपी विष बेटों और पोतोंका भी नाश कर डालता है। मनुष्य लोहे और पत्थरके चूरेको तथा विषको भी पचा सकता है; परन्तु तीनों लोकोंमें कौन ऐसा पुरुष है, जो ब्राह्मणके धनको पचा सके। ब्राह्मणके धनसे जो सुख उठाया जाता है, देवताके धनके प्रति जो राग पैदा होता है, वह धन समूचे कुलके नाशका कारण होता है तथा अपना विनाश तो वह करता ही है। ब्राह्मणका धन, ब्रह्महत्या, दरिद्रका धन, गुरु और मित्रका सुवर्ण—ये सब स्वर्गमें जानेपर भी मनुष्यको पीडा पहुँचाते हैं।

देवश्रेष्ठ इन्द्र! जो ब्राह्मण श्रोत्रिय, कुलीन, दरिद्र, संतुष्ट, विनयी, वेदाभ्यासी, तपस्वी, ज्ञानी और इन्द्रियसंयमी हो, उसे ही दिया हुआ दान अक्षय होता है। जैसे कच्चे बर्तनमें रखा हुआ दूध, दही, घी अथवा मधु दुर्बलताके कारण पात्रको ही छेद देता है, उसी प्रकार यदि अज्ञानी पुरुष गौ, सुवर्ण, वस्त्र, अन्न, पृथ्वी और तिल आदिका दान ग्रहण करता है तो वह काष्ठकी भाँति भस्म हो जाता है।

जो नया पोखरा बनवाता है, अथवा पुरानेको ही खुदवाता है, वह समस्त कुलका उद्धार करके स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। बावली, कुआँ, तडाग और बगीचे पुनः संस्कार (जीर्णोद्धार) करनेपर मोक्षरूप फल प्रदान करते हैं। इन्द्र! जिसके जलाशयमें गर्मीकी मौसमतक पानी ठहरता है, वह कभी दुर्गम एवं विषम संकटका सामना नहीं करता। देवश्रेष्ठ! यदि एक दिन भी पानी ठहर जाय तो वह सात पहलेकी और सात पीछेकी पीढियोंका उद्धार कर देता है। दीपका प्रकाश दान करनेसे मनुष्य रूपवान् होता है और दक्षिणा देनेसे स्मरण-शक्ति तथा मेधा (धारणा-शक्ति) को प्राप्त करता है। यदि बलपूर्वक अपहरण की हुई भूमि, गौ तथा स्त्रीको मनुष्य पुनः लौटा न दे तो उसे ब्रह्महत्यारा कहा जाता है।

इन्द्र! जो विवाह, यज्ञ तथा दानका अवसर उपस्थित होनेपर उसमें मोहवश विघ्न डालता है, वह मरनेपर कीड़ा होता है। दान करनेसे धन और जीव-रक्षा करनेसे जीवन सफल होता है। रूप, ऐश्वर्य तथा आरोग्य—ये अहिंसाके फल हैं, जो अनुभवमें आते हैं। फल-मूलके भोजनसे सम्मान तथा सत्यसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। मरणान्त उपवाससे राज्य और सर्वत्र सुख उपलब्ध होता है। तीनों काल स्नान करनेवाला मनुष्य रूपवान् होता है। वायु पीकर रहनेवाला यज्ञका फल पाता है। जो उपवास करता है, वह चिरकालतक स्वर्गमें निवास करता है। जो सदा भूमिपर शयन करता है, उसे अभीष्ट गतिकी प्राप्ति होती है। जो पवित्र धर्मका आचरण करता है, वह स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। जो द्विजश्रेष्ठ बृहस्पतिजीके इस पवित्र मतका स्वाध्याय करते हैं, उनकी आयु, विद्या, यश और बल—ये चार बातें बढ़ती हैं।

महाराज दशरथका शनिको संतुष्ट करके लोकका कल्याण करना

नारदजीने पूछा—सुरश्रेष्ठ! शनैश्चरकी दी हुई पीड़ा कैसे दूर होती है? यह मुझे बताइये।

महादेवजी बोले—देवर्षे! सुनो, ये शनैश्चर देवताओंमें प्रसिद्ध कालरूपी महान् ग्रह हैं। इनके मस्तकपर जटा है,

* कृतं दत्तं तपोऽधीतं यत्किञ्चिद्धर्मसंस्थितम्। अर्धाङ्गुलस्य सीमाया हरणेन प्रणश्यति॥
गोतीर्थं ग्रामरथ्यां च श्मशानं ग्राममेव च। संपीड्य नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम्॥ (३३। ३८-३९)

शरीरमें बहुत-से रोएँ हैं तथा ये दानवोंको भय पहुँचानेवाले हैं। पूर्वकालकी बात है, रघुवंशमें दशरथ नामके एक बहुत प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। वे चक्रवर्ती सम्राट्, महान् वीर तथा सातों द्वीपोंके स्वामी थे। उन दिनों ज्योतिषियोंने यह जानकर कि शनैश्चर कृत्तिकाके अन्तमें जा पहुँचे हैं, राजाको सूचित किया—'महाराज ! इस समय शनि रोहिणीका भेदन करके आगे बढ़ेंगे; यह अत्यन्त उग्र शाकटभेद नामक योग है, जो देवताओं तथा असुरोंके लिये भी भयंकर है। इससे बारह वर्षोंतक संसारमें अत्यन्त भयानक दुर्भिक्ष फैलेगा।' यह सुनकर राजाने मन्त्रियोंके साथ विचार किया और वसिष्ठ आदि ब्राह्मणोंसे पूछा—'द्विजवरो ! बताइये, इस संकटको रोकनेका यहाँ कौन-सा उपाय है ?'

वसिष्ठजी बोले—राजन् ! यह रोहिणी प्रजापति ब्रह्माजी-का नक्षत्र है, इसका भेद हो जानेपर प्रजा कैसे रह सकती है। ब्रह्मा और इन्द्र आदिके लिये भी यह योग असाध्य है।

महादेवजी कहते हैं—नारद ! इस बातपर विचार करके राजा दशरथने मनमें महान् साहसका संग्रह किया और दिव्यास्त्रोंसहित दिव्य धनुष लेकर रथपर आरूढ हो बड़े वेगसे वे नक्षत्र-मण्डलमें गये। रोहिणीपृष्ठ सूर्यसे सवा लाख योजन ऊपर है; वहाँ पहुँचकर राजाने धनुषको कान-

तक खींचा और उसपर संहारास्त्रका संधान किया। वह अस्त्र देवता और असुरोंके लिये भयंकर था। उसे देखकर शनि कुछ भयभीत हो हँसते हुए बोले—'राजेन्द्र ! तुम्हारा महान् पुरुषार्थ शत्रुको भय पहुँचानेवाला है। मेरी दृष्टिमें आकर देवता, असुर, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर और नाग—सब भस्म हो जाते हैं; किन्तु तुम बच गये। अतः महाराज ! तुम्हारे तेज और पौरुषसे मैं संतुष्ट हूँ। वर माँगो; तुम अपने मनसे जो कुछ चाहोगे, उसे अवश्य दूँगा।'

दशरथने कहा—शनिदेव ! जबतक नदियाँ और समुद्र हैं, जबतक सूर्य और चन्द्रमासहित पृथ्वी कायम है, तबतक आप रोहिणीका भेदन करके आगे न बढ़ें। साथ ही कभी बारह वर्षोंतक दुर्भिक्ष न करें।

शनि बोले—एवमस्तु।

महादेवजी कहते हैं—ये दोनों वर पाकर राजा बड़े प्रसन्न हुए, उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। वे रथके ऊपर धनुष डाल हाथ जोड़ शनिदेवकी इस प्रकार स्तुति करने लगे।

दशरथ बोले—जिनके शरीरका वर्ण कृष्ण, नील तथा भगवान् शङ्करके समान है, उन शनिदेवको नमस्कार है। जो जगत्के लिये कालाग्नि एवं कृतान्तरूप हैं, उन शनैश्चर-को बारंबार नमस्कार है। जिनका शरीर कङ्काल है तथा जिनकी दाढ़ी-मूँछ और जटा बढ़ी हुई है, उन शनिदेवको प्रणाम है। जिनके बड़े-बड़े नेत्र, पीठमें सटा हुआ पेट और भयानक आकार हैं, उन शनैश्चरदेवको नमस्कार है। जिनके शरीरका ढाँचा फैला हुआ है, जिनके रोएँ बहुत मोटे हैं, जो लंबे-चौड़े किन्तु सूखे शरीरवाले हैं तथा जिनकी दाढ़ें कालरूप हैं, उन शनिदेवको बारंबार प्रणाम है। शने ! आपके नेत्र खोखलेके समान गहरे हैं, आपकी ओर देखना कठिन है, आप घोर, रौद्र, भीषण और विकराल हैं। आप-को नमस्कार है। बलीमुख ! आप सब कुछ भक्षण करने-वाले हैं; आपको नमस्कार है। सूर्यनन्दन ! भास्करपुत्र ! अभय देनेवाले देवता ! आपको प्रणाम है। नीचेकी ओर दृष्टि रखनेवाले शनिदेव ! आपको नमस्कार है। संवर्तक ! आपको प्रणाम है। मन्दगतिसे चलनेवाले शनैश्चर ! आपका प्रतीक तलवारके समान है, आपको पुनः-पुनः प्रणाम है। आपने तपस्यासे अपनी देहको दग्ध कर दिया है; आप सदा योगाभ्यासमें तत्पर, भूखसे आतुर और

अतृप्त रहते हैं। आपको सदा-सर्वदा नमस्कार है। ज्ञाननेत्र! आपको प्रणाम है। कश्यपनन्दन सूर्यके पुत्र शनिदेव! आपको नमस्कार है। आप संतुष्ट होनेपर राज्य दे देते हैं और रुष्ट होनेपर उसे तत्क्षण हर लेते हैं। देवता, असुर, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर और नाग—ये सब आपकी दृष्टि पड़नेपर समूल नष्ट हो जाते हैं। देव! मुझपर प्रसन्न होइये। मैं वर पानेके योग्य हूँ और आपकी शरणमें आया हूँ।*

महादेवजी कहते हैं—नारद! राजाके इस प्रकार स्तुति करनेपर ग्रहोंके राजा महाबलवान् सूर्यपुत्र शनैश्चर बोले—उत्तम व्रतके पालक राजेन्द्र! तुम्हारी इस स्तुतिसे मैं संतुष्ट हूँ। रघुनन्दन! तुम इच्छानुसार वर माँगो, मैं तुम्हें अवश्य दूँगा।

दशरथ बोले—सूर्यनन्दन! आजसे आप देवता, असुर, मनुष्य, पशु, पक्षी तथा नाग—किसी भी प्राणीको पीड़ा न दें।

शनिने कहा—राजन्! देवता, असुर, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर तथा राक्षस—इनमेंसे किसीके भी मृत्युस्थान, जन्मस्थान अथवा चतुर्थ स्थानमें मैं रहूँ तो उसे मृत्युका कष्ट दे सकता हूँ। किन्तु जो श्रद्धासे युक्त, पवित्र और एकाग्रचित्त हो मेरी लोहमयी सुन्दर प्रतिमाका शमीपत्रोंसे पूजन करके तिलमिश्रित उड़द-भात, लोहा, काली गौ या काला वृषभ ब्राह्मणको दान करता है तथा विशेषतः मेरे दिनको इस स्तोत्रसे मेरी पूजा करता है, पूजनके पश्चात् भी हाथ जोड़कर मेरे स्तोत्रका जप करता है, उसे मैं कभी भी पीड़ा नहीं दूँगा। गोचरमें, जन्मलग्नमें, दशाओं तथा अन्तर्दशाओंमें ग्रह-पीड़ाका निवारण करके मैं सदा उसकी रक्षा करूँगा। इसी विधानसे सारा संसार पीड़ासे मुक्त हो सकता है। रघुनन्दन! इस प्रकार मैंने युक्तिसे तुम्हें वरदान दिया है।

महादेवजी कहते हैं—नारद! वे तीनों वरदान पाकर उस समय राजा दशरथने अपनेको कृतार्थ माना। वे शनैश्चरको नमस्कार करके उनकी आज्ञा ले रथपर सवार हो बड़े वेगसे अपने स्थानको चले गये। उन्होंने कल्याण प्राप्त कर लिया था। जो शनिवारको सबेरे उठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है तथा पाठ होते समय जो श्रद्धापूर्वक इसे सुनता है, वह मनुष्य पापसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

त्रिस्पृशाव्रतकी विधि और महिमा

नारदजी बोले—सर्वेश्वर! अब आप विशेष रूपसे त्रिस्पृशा नामक व्रतका वर्णन कीजिये, जिसे सुनकर लोग तत्काल कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं।

महादेवजीने कहा—विद्वन्! पूर्वकालमें सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे सनत्कुमारजीने व्यासजीके प्रति इस व्रतका वर्णन किया था। यह व्रत सम्पूर्ण पाप-राशिका शमन करनेवाला और महान् दुःखोंका विनाशक है। विप्र! त्रिस्पृशा नामक महान् व्रत सम्पूर्ण कामनाओंका दाता माना गया है। ब्राह्मणोंके लिये तो मोक्षदायक भी है। महामुने! जो प्रतिदिन 'त्रिस्पृशा'का नामोच्चारण करता है, उसके समस्त पापोंका क्षय हो जाता है। देवाधिदेव भगवान्ने मोक्ष-प्राप्तिके लिये इस व्रतकी सृष्टि की है, इसीलिये इसे

* नमः कृष्णाय नीलाय शितिकण्ठनिभाय च। नमः कालाग्निरूपाय कृतान्ताय च वै नमः॥
नमो निर्मांसदेहाय दीर्घश्मश्रुजटाय च। नमो विशालनेत्राय शुष्कोदरभयाकृते॥
नमः पुष्कलगात्राय स्थूलरोम्णे च वै पुनः। नमो दीर्घाय शुष्काय कालदंष्ट्र नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते कोटराक्षाय दुर्निरीक्ष्याय वै नमः। नमो घोराय रौद्राय भीषणाय करालिने॥
नमस्ते सर्वभक्षाय वलीमुख नमोऽस्तु ते। सूर्यपुत्र नमस्तेऽस्तु भास्करेऽभयदाय च॥
अधोदृष्टे नमस्तेऽस्तु संवर्तक नमोऽस्तु ते। नमो मन्दगते तुभ्यं निस्त्रिंशाय नमोऽस्तु ते॥
तपसा दग्धदेहाय नित्यं योगरताय च। नमो नित्यं क्षुधार्ताय अतृप्ताय च वै नमः॥
ज्ञानचक्षुर्नमस्तेऽस्तु कश्यपात्मजसूनवे। तुष्टो ददासि वै राज्यं रुष्टो हरसि तत्क्षणात्॥
देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः। त्वया विलोकिताः सर्वे नाशं यान्ति समूलतः।
प्रसादं कुरु मे देव वरार्होऽहमुपागतः॥
(३४। २७—३५)

'वैष्णवी तिथि' कहते हैं। इन्द्रियोंका निग्रह न होनेसे मनमें स्थिरता नहीं आती [मनकी यह अस्थिरता ही मोक्षमें बाधक है]। ब्रह्मन् ! जो ध्यान-धारणासे वर्जित, विषयपरायण तथा काम-भोगमें आसक्त हैं, उनके लिये त्रिस्पृशा ही मोक्षदायिनी है। मुनिश्रेष्ठ ! पूर्वकालमें जब चक्रधारी श्रीविष्णुके द्वारा क्षीरसागरका मन्थन हो रहा था, उस समय चरणोंमें पड़े हुए देवताओंके मध्यमें ब्रह्माजीसे मैंने ही इस व्रतका वर्णन किया था। जो लोग विषयोंमें आसक्त रहकर भी त्रिस्पृशाका व्रत करेंगे, उनके लिये भी मैंने मोक्षका अधिकार दे रखा है। नारद ! तुम इस व्रतका अनुष्ठान करो, क्योंकि त्रिस्पृशा मोक्ष देनेवाली है। महामुने ! बड़े-बड़े मुनियोंके समुदायने इस व्रतका पालन किया है। यदि कार्तिक शुक्लपक्षमें सोमवार या बुधवारसे युक्त त्रिस्पृशा एकादशी हो तो वह करोड़ों पापोंका नाश करनेवाली है। विप्रवर ! और पापोंकी तो बात ही क्या है, त्रिस्पृशाके व्रतसे ब्रह्महत्या आदि महापाप भी नष्ट हो जाते हैं। प्रयागमें मृत्यु होनेसे तथा द्वारकामें श्रीकृष्णके निकट गोमतीमें स्नान करनेसे शाश्वत मोक्ष प्राप्त होता है, परन्तु त्रिस्पृशाका उपवास करनेसे घरपर भी मुक्ति हो जाती है। इसलिये विप्रवर नारद ! तुम मोक्षदायिनी त्रिस्पृशाके व्रतका अवश्य अनुष्ठान करो। विप्र ! पूर्वकालमें भगवान् माधवने प्राची सरस्वतीके तटपर गङ्गाजीके प्रति कृपापूर्वक त्रिस्पृशा-व्रतका वर्णन किया था।

गङ्गाने पूछा—हृषीकेश ! ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पाप-राशियोंसे युक्त मनुष्य मेरे जलमें स्नान करते हैं, उनके पापों और दोषोंसे मेरा शरीर कलुषित हो गया है। देव ! गरुडध्वज ! मेरा वह पातक कैसे दूर होगा ?

प्राचीमाधव बोले—शुभे ! तुम त्रिस्पृशाका व्रत करो। यह सौ करोड़ तीर्थोंसे भी अधिक महत्त्वशालिनी है। करोड़ों यज्ञ, व्रत, दान, जप, होम और सांख्य-योगसे भी इसकी शक्ति बढ़ी हुई है। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली है। नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा ! त्रिस्पृशा-व्रत जिस-किसी महीनेमें भी आये तथा वह शुक्लपक्षमें हो या कृष्णपक्षमें, उसका अनुष्ठान करना ही चाहिये। उसे करके तुम पापसे मुक्त हो जाओगी। जब एक ही दिन एकादशी, द्वादशी तथा रात्रिके अन्तिम प्रहरमें त्रयोदशी भी हो तो उसे 'त्रिस्पृशा' समझना चाहिये। उसमें दशमीका योग नहीं होता। देवनदी ! एकादशी व्रतमें दशमी-वेधका दोष मैं नहीं क्षमा करता। ऐसा जानकर दशमीयुक्त एकादशीका व्रत नहीं करना चाहिये। उसे करनेसे करोड़ों जन्मोंके किये हुए पुण्य तथा संतानका नाश होता है। वह पुरुष अपने वंशको स्वर्गसे गिराता और रौरव आदि नरकोंमें पहुँचाता है। अपने शरीरको शुद्ध करके मेरे दिन—एकादशीका व्रत करना चाहिये। द्वादशी मुझे अत्यन्त प्रिय है, मेरी आज्ञासे इसका व्रत करना उचित है।

गङ्गा बोलीं—जगन्नाथ ! आपके कहनेसे मैं त्रिस्पृशा-का व्रत अवश्य करूँगी, आप मुझे इसकी विधि बताइये।

प्राचीमाधवने कहा—सरिताओंमें उत्तम गङ्गा देवी ! सुनो, मैं त्रिस्पृशाका विधान बताता हूँ। इसका श्रवण मात्र करनेसे भी मनुष्य पातकोंसे मुक्त हो जाता है। अपने वैभवके अनुसार एक या आधे पल सोनेकी मेरी प्रतिमा बनवानी चाहिये। इसके बाद एक ताँबेके पात्रको तिलसे भरकर रखे और जलसे भरे हुए सुन्दर कलशकी स्थापना करे, जिसमें पञ्चरत्न मिलाये गये हों। कलशको फूलोंकी मालाओंसे आवेष्टित करके कपूर आदिसे सुवासित करे। इसके बाद भगवान् दामोदरको स्थापित करके उन्हें स्नान कराये और चन्दन चढ़ाये। फिर भगवान्को वस्त्र धारण कराये। तदनन्तर पुराणोक्त सामयिक सुन्दर पुष्प तथा कोमल तुलसीदल-से भगवान्की पूजा करे। उन्हें छत्र और उपानह् (जूतियाँ) अर्पण करे ! मनोहर नैवेद्य और बहुत-से सुन्दर-सुन्दर फलों-का भोग लगाये। यज्ञोपवीत तथा नूतन एवं सुदृढ उत्तरीय वस्त्र चढ़ाये। सुन्दर ऊँची बाँसकी छड़ी भी भेंट करे। 'दामोदराय नमः' कहकर दोनों चरणोंकी, 'माधवाय नमः' से दोनों घुटनोंकी, 'कामप्रदाय नमः' से गुह्यभागकी तथा 'वामनमूर्तये नमः' कहकर कटिकी पूजा करे। 'पद्मनाभाय नमः' से नाभिकी, 'विश्वमूर्तये नमः' से पेटकी, 'ज्ञानगम्याय नमः' से हृदयकी, 'वैकुण्ठगामिने नमः' से कण्ठकी, 'सहस्रबाहवे नमः' से बाहुओंकी, 'योगरूपिणे नमः' से नेत्रोंकी, 'सहस्रशीर्ष्णे नमः' से सिरकी तथा 'माधवाय नमः' कहकर सम्पूर्ण अङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार विधिवत् पूजा करके विधिके अनुसार अर्घ्य देना चाहिये। जलयुक्त शङ्खके ऊपर सुन्दर नारियल रखकर उसमें रक्षासूत्र लपेट दे। फिर दोनों हाथोंमें वह शङ्ख आदि लेकर निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़े—

स्मृतो हरसि पापानि यदि नित्यं जनार्दन ॥
दुःस्वप्नं दुर्निमित्तानि मनसा दुर्विचिन्तितम् ।
नारकं तु भयं देव भयं दुर्गतिसंभवम् ॥
यन्मम स्यान्महादेव ऐहिकं पारलौकिकम् ।
तेन देवेश मां रक्ष गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥
सदा भक्तिर्ममैवास्तु दामोदर तवोपरि ।
(३५ । ६९—७२)

'जनार्दन ! यदि आप सदा स्मरण करनेपर मनुष्यके सब पाप हर लेते हैं तो देव ! मेरे दुःस्वप्न, अपशकुन, मानसिक दुश्चिन्ता, नारकीय भय तथा दुर्गतिजन्य त्रास दूर लीजिये । महादेव ! देवेश्वर ! मेरे लिये इहलोक तथा परलोकमें जो भय हैं, उनसे मेरी रक्षा कीजिये तथा यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये । आपको नमस्कार है । दामोदर ! सदा आपमें ही मेरी भक्ति बनी रहे ।'

तत्पश्चात् धूप, दीप और नैवेद्य अर्पण करके भगवान्‌की आरती उतारे । उनके मस्तकपर शङ्ख घुमाये । यह सब विधान पूरा करके सद्‌गुरुकी पूजा करे । उन्हें सुन्दर वस्त्र, पगड़ी तथा अंगा दे । साथ ही जूता, छत्र, अँगूठी, कमण्डलु, भोजन, पान, सप्तधान्य तथा दक्षिणा दे । गुरु और भगवान्‌की पूजाके पश्चात् श्रीहरिके समीप जागरण करे । जागरणमें गीत, नृत्य तथा अन्यान्य उपचारोंका भी समावेश रहना चाहिये । तदनन्तर रात्रिके अन्तमें विधिपूर्वक भगवान्‌को अर्घ्य दे स्नान आदि कार्य करके ब्राह्मणोंको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भोजन करे ।

महादेवजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! 'त्रिस्पृशा' व्रतका यह अद्भुत उपाख्यान सुनकर मनुष्य गङ्गातीर्थमें स्नान करनेका पुण्य-फल प्राप्त करता है । त्रिस्पृशाके उपवाससे हजार अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञोंका फल मिलता है । यह व्रत करनेवाला पुरुष पितृकुल, मातृकुल तथा पत्नीकुलके सहित विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है । करोड़ों तीर्थोंमें जो पुण्य तथा करोड़ों क्षेत्रोंमें जो फल मिलता है, वह त्रिस्पृशाके उपवाससे मनुष्य प्राप्त कर लेता है । द्विजश्रेष्ठ ! जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा अन्य जातिके लोग भगवान् श्रीकृष्णमें मन लगाकर इस व्रतको करते हैं, वे सब इस धराधामको छोड़नेपर मुक्त हो जाते हैं । इसमें द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये । यह मन्त्रोंमें मन्त्रराज माना गया है । इसी प्रकार त्रिस्पृशा सब व्रतोंमें उत्तम बतायी गयी है । जिसने इसका व्रत किया, उसने सम्पूर्ण व्रतोंका अनुष्ठान कर लिया । पूर्वकालमें स्वयं ब्रह्माजीने इस व्रतको किया था, तदनन्तर अनेकों ऋषियोंने भी इसका अनुष्ठान किया; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है । नारद ! यह त्रिस्पृशा मोक्ष देनेवाली है ।

पक्षवर्धिनी एकादशी तथा जागरणका माहात्म्य

नारदजीने पूछा—महादेव ! 'पक्षवर्धिनी' नामवाली तिथि कैसी होती है, जिसका व्रत करनेसे मनुष्य महान् पापसे छुटकारा पा जाता है ?

श्रीमहादेवजी बोले—यदि अमावास्या अथवा पूर्णिमा साठ दण्डकी होकर दिन-रात अविकल रूपसे रहे और दूसरे दिन प्रतिपदमें भी उसका कुछ अंश चला गया हो तो वह 'पक्षवर्धिनी' मानी जाती है । उस पक्षकी एकादशीका भी यही नाम है, वह दस हजार अश्वमेध यज्ञोंके समान फल देनेवाली होती है । अब उस दिन की जानेवाली पूजाविधिका वर्णन करता हूँ, जिससे भगवान् लक्ष्मीपतिको संतोष प्राप्त होता है । सबसे पहले जलसे भरे हुए कलशकी स्थापना करनी चाहिये । कलश नवीन हो—फूटा-टूटा न हो और चन्दनसे चर्चित किया गया हो । उसके भीतर पञ्चरत्न डाले गये हों तथा वह कलश फूलकी मालाओंसे आवृत हो । उसके ऊपर एक ताँबेका पात्र रखकर उसमें गेहूँ भर देना चाहिये । उस पात्रमें भगवान्‌के सुवर्णमय विग्रहकी स्थापना करे । जिस मासमें पक्षवर्धिनी तिथि पड़ी हो, उसीका नाम भगवद्विग्रहका भी नाम समझना चाहिये । जगत्‌के स्वामी देवेश्वर जगन्नाथका स्वरूप अत्यन्त मनोहर बनवाना चाहिये । फिर विधिपूर्वक पञ्चामृतसे भगवान्‌को नहलाना तथा कुङ्कुम, अरगजा और चन्दनसे अनुलेप करना चाहिये । फिर दो वस्त्र अर्पण करने चाहिये; उनके साथ छत्र और जूते भी हों । इसके बाद कलशपर विराजमान देवेश्वर श्रीहरिकी पूजा आरम्भ करे ।

'पद्मनाभाय नमः' कहकर दोनों चरणोंकी, 'विश्वमूर्तये नमः' बोलकर दोनों घुटनोंकी, 'ज्ञानगम्याय नमः' से दोनों जाँघोंकी, 'ज्ञानप्रदाय नमः' से कटिभागकी, 'विश्वनाथाय नमः' से उदरकी, 'श्रीधराय नमः' से हृदयकी, 'कौस्तुभकण्ठाय नमः' से कण्ठकी, 'क्षत्रान्तकारिणे नमः' से दोनों बाँहोंकी, व्योममूर्ध्ने नमः' से ललाटकी तथा 'सर्वरूपिणे नमः' से सिरकी पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न अस्त्रोंका भी उनके नाममन्त्रद्वारा पूजन करना उचित है। अन्तमें 'दिव्यरूपिणे नमः' कहकर भगवान्‌के सम्पूर्ण अङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये।

इस तरह विधिवत् पूजन करके विद्वान् पुरुष सुन्दर नारियलके द्वारा चक्रधारी देवदेव श्रीहरिको अर्घ्य प्रदान करे। इस अर्घ्यदानसे ही व्रत पूर्ण होता है। अर्घ्यदानका मन्त्र इस प्रकार है—

संसारार्णवमग्नं मो मामुद्धर जगत्पते।
त्वमीशः सर्वलोकानां त्वं साक्षाच्च जगत्पतिः॥
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं पद्मनाभ नमोऽस्तु ते।
(३८। १४-१५)

'जगदीश्वर! मैं संसारसागरमें डूब रहा हूँ, मेरा उद्धार कीजिये। आप सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर तथा साक्षात् जगत्पति परमेश्वर हैं। पद्मनाभ! आपको नमस्कार है। मेरा दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार कीजिये।'

तत्पश्चात् भगवान् केशवको भक्तिपूर्वक भाँति-भाँतिके नैवेद्य अर्पण करे, जो मनको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले और मधुर आदि छहों रसोंसे युक्त हों। इसके बाद भगवान्‌को भक्तिके साथ कर्पूरयुक्त ताम्बूल निवेदन करे। घी अथवा तिलके तेलसे दीपक जलाकर रखे। यह सब करनेके पश्चात् गुरुकी पूजा करे। उन्हें वस्त्र, पगड़ी तथा जामा दे। अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा भी दे। फिर भोजन और ताम्बूल निवेदन करके आचार्यको संतुष्ट करे। निर्धन पुरुषोंको भी यथाशक्ति प्रयत्नपूर्वक पक्षवर्धिनी एकादशीका व्रत करना चाहिये। तदनन्तर गीत, नृत्य, पुराण-पाठ तथा हर्षके साथ रात्रिमें जागरण करे।

जो मनीषी पुरुष पक्षवर्धिनी एकादशीका माहात्म्य श्रवण करते हैं, उनके द्वारा सम्पूर्ण व्रतका अनुष्ठान हो जाता है। पञ्चाग्निसेवन तथा तीर्थोंमें साधना करनेसे जो पुण्य होता है, वह श्रीविष्णुके समीप जागरण करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। पक्षवर्धिनी एकादशी परम पुण्यमयी तथा सब पापोंका नाश करनेवाली है। ब्रह्मन्! यह उपवास करनेवाले मनुष्योंकी करोड़ों हत्याओंका भी विनाश कर डालती है। मुने! पूर्वकालमें महर्षि वसिष्ठ, भरद्वाज, ध्रुव तथा राजा अम्बरीषने भी इसका व्रत किया था। यह तिथि श्रीविष्णुको अत्यन्त प्रिय है। यह काशी तथा द्वारकापुरीके समान पवित्र है। भक्त पुरुषके उपवास करनेपर यह उसे मनोवाञ्छित फल प्रदान करती है। जैसे सूर्योदय होनेपर तत्काल अन्धकारका नाश हो जाता है, उसी प्रकार पक्षवर्धिनीका व्रत करनेसे पापराशि नष्ट हो जाती है।

नारद! अब मैं एकादशीकी रातमें जागरण करनेका माहात्म्य बतलाऊँगा, ध्यान देकर सुनो। भक्त पुरुषको चाहिये कि एकादशी तिथिको रात्रिके समय भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन करके वैष्णवोंके साथ उनके सामने जागरण करे। जो गीत, वाद्य, नृत्य, पुराण-पाठ, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, चन्दनानुलेप, फल, अर्घ्य, श्रद्धा, दान, इन्द्रियसंयम, सत्यभाषण तथा शुभकर्मके अनुष्ठानपूर्वक प्रसन्नताके साथ श्रीहरिके समक्ष जागरण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान्‌का प्रिय होता है। जो विद्वान् मनुष्य भगवान् विष्णुके समीप जागरण करते, श्रीकृष्णकी भावना करते हुए कभी नींद नहीं लेते तथा मन-ही-मन बारंबार श्रीकृष्णका नामोच्चारण करते हैं, उन्हें परम धन्य समझना चाहिये। विशेषतः एकादशीकी रातमें जागनेपर तो वे और भी धन्यवादके पात्र हैं। जागरणके समय एक क्षण गोविन्दका नाम लेनेसे व्रतका चौगुना फल होता है, एक पहरतक नामोच्चारणसे कोटिगुना फल मिलता है और चार पहरतक नामकीर्तन करनेसे असीम फलकी प्राप्ति होती है। श्रीविष्णुके आगे आधे निमेष भी जागनेपर कोटिगुना फल होता है, उसकी संख्या नहीं है। जो नरश्रेष्ठ भगवान् केशवके आगे नृत्य करता है, उसके पुण्यका फल जन्मसे लेकर मृत्युकालतक कभी क्षीण नहीं होता। महाभाग! प्रत्येक प्रहरमें विस्मय और उत्साहसे युक्त हो पाप तथा आलस्य आदि छोड़कर निर्वेदशून्य हृदयसे श्रीहरिके समक्ष नमस्कार और नीराजनासे युक्त आरती उतारनी चाहिये। जो मनुष्य एकादशीको भक्तिपूर्वक अनेक गुणोंसे युक्त जागरण करता है, वह फिर इस पृथ्वीपर जन्म नहीं लेता। जो धनकी

कंजूसी छोड़कर पूर्वोक्त प्रकारसे एकादशीको भक्तिसहित जागरण करता है, वह परमात्मामें लीन होता है।

जो भगवान् विष्णुके लिये जागरणका अवसर प्राप्त होनेपर उसका उपहास करता है, वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है। प्रतिदिन वेद-शास्त्रमें परायण तथा यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला ही क्यों न हो, यदि एकादशीकी रातमें जागरणका समय आनेपर उसकी निन्दा करता है तो उसका अधःपतन होता है। जो मेरी (शिवकी) पूजा करते हुए विष्णुकी निन्दामें तत्पर रहता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ नरकमें पड़ता है। विष्णु ही शिव हैं और शिव ही विष्णु हैं। दोनों एक ही मूर्तिकी दो झाँकियोंके समान स्थित हैं, अतः किसी प्रकार भी इनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। यदि जागरणके समय पुराणकी कथा बाँचनेवाला कोई न हो तो नाच-गान कराना चाहिये। यदि कथावाचक मौजूद हों तो पहले पुराणका ही पाठ होना चाहिये। वत्स! श्रीविष्णुके लिये जागरण करनेपर एक हजार अश्वमेध तथा दस हजार वाजपेय यज्ञोंसे भी करोड़गुना पुण्य प्राप्त होता है। श्रीहरिकी प्रसन्नताके लिये जागरण करके मनुष्य पिता, माता तथा पत्नी—तीनोंके कुलोंका उद्धार कर देता है।

यदि एकादशीके व्रतका दिन दशमीसे विद्ध हो तो श्रीहरिका पूजन, जागरण और दान आदि सब व्यर्थ होता है—ठीक उसी तरह, जैसे कृतघ्न मनुष्योंके साथ किया हुआ नेकीका बर्ताव व्यर्थ हो जाता है। जो वेधरहित एकादशीको जागरण करते हैं, उनके बीचमें साक्षात् श्रीहरि संतुष्ट होकर नृत्य करते हैं। जो श्रीहरिके लिये नृत्य, गीत और जागरण करता है, उसके लिये ब्रह्माजीका लोक, मेरा कैलास-धाम तथा भगवान् श्रीविष्णुका वैकुण्ठधाम—सब-के-सब निश्चय ही सुलभ हैं। जो स्वयं श्रीहरिके लिये जागरण करते हुए और लोगोंको भी जगाये रखता है, वह विष्णुभक्त पुरुष अपने पितरोंके साथ वैकुण्ठलोकमें निवास करता है। जो श्रीहरिके लिये जागरण करनेकी लोगोंको सलाह देता है, वह मनुष्य साठ हजार वर्षोंतक श्वेतद्वीपमें निवास करता है। नारद! मनुष्य करोड़ों जन्मोंमें जो पाप सञ्चित करता है, वह सब श्रीहरिके लिये एक रात जागरण करनेपर नष्ट हो जाता है। जो शालग्राम-शिलाके समक्ष जागरण करते हैं, उन्हें एक-एक पहरमें कोटि-कोटि तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्त होता है।

जागरणके लिये भगवान्के मन्दिरमें जाते समय मनुष्य जितने पग चलता है, वे सभी अश्वमेध यज्ञके समान फल देनेवाले होते हैं। पृथ्वीपर चलते समय दोनों चरणोंपर जितने धूलि-कण गिरते हैं, उतने हजार वर्षोंतक जागरण करनेवाला पुरुष दिव्यलोकमें निवास करता है।

इसलिये प्रत्येक द्वादशीको जागरणके लिये अपने घरसे भगवान् विष्णुके मन्दिरमें जाना चाहिये। इससे कलिमलका विनाश होता है। दूसरोंकी निन्दामें संलग्न होना, मनका प्रसन्न न रहना, शास्त्रचर्चाका न होना, संगीतका अभाव, दीपक न जलाना, शक्तिके अनुसार पूजाके उपचारोंका न होना, उदासीनता, निन्दा तथा कलह—इन दोषोंसे युक्त नौ प्रकारका जागरण अधम माना गया है।* जिस जागरणमें शास्त्रकी चर्चा, सात्त्विक नृत्य, संगीत, वाद्य, ताल, तैलयुक्त दीपक, कीर्तन, भक्तिभावना, प्रसन्नता, संतोषजनकता, समुदायकी उपस्थिति तथा लोगोंके मनोरञ्जनका सात्त्विक साधन हो, वह उक्त बारह गुणोंसे युक्त जागरण भगवान्को बहुत प्रिय है। शुक्ल और कृष्ण दोनों ही पक्षोंकी एकादशीको प्रयत्नपूर्वक जागरण करना चाहिये।† नारद! परदेशमें जानेपर मार्गका थका-माँदा होनेपर भी जो द्वादशीको भगवान् वासुदेवके निमित्त किये जानेवाले जागरणका नियम नहीं छोड़ता, वह मुझे विशेष प्रिय है। जो एकादशीके दिन भोजन कर लेता है, उसे पशुसे भी गया-बीता समझना चाहिये; वह न तो शिवका उपासक है न सूर्यका, न देवीका भक्त है और न गणेशजीका। जो एकादशीको जागरण करते हैं, उनका बाहर-भीतर यदि करोड़ों पापोंसे घिरा हो तो भी वे मुक्त हो जाते हैं। वेधरहित द्वादशीका व्रत और श्रीविष्णुके लिये

* परापवादसंयुक्तं मनःप्रसादवर्जितम्।
शास्त्रहीनमगान्धर्वं यथा दीपविवर्जितम्॥
शक्त्योपचाररहितमुदासीनं सनिन्दनम्।
कलियुक्तं विशेषेण जागरं नवधाऽधमम्॥
(३९। ५३-५४)

† सशास्त्रं जागरं यच्च नृत्यगन्धर्वसंयुतम्।
सवाद्यं तालसंयुक्तं सदीपं मधुभिर्युतम्॥
उच्चारैस्तु समायुक्तं यथोक्तैर्भक्तिभावितैः।
प्रसन्नं तुष्टिजननं समूढं लोकरञ्जनम्॥
गुणैर्द्वादशभिर्युक्तं जागरं माधवप्रियम्।
कर्तव्यं तद् प्रयत्नेन पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः॥
(३९। ५५-५७

किया जानेवाला जागरण यमदूतोंका मानमर्दन करनेवाला है। मुनिश्रेष्ठ! एकादशीको जागरण करनेवाले मनुष्य अवश्य मुक्त हो जाते हैं।

जो रातको भगवान् वासुदेवके समक्ष जागरणमें प्रवृत्त होनेपर प्रसन्नचित्त हो ताली बजाते हुए नृत्य करता, नाना प्रकारके कौतुक दिखाते हुए मुखसे गीत गाता, वैष्णवजनोंका मनोरञ्जन करते हुए श्रीकृष्ण-चरितका पाठ करता, रोमाञ्चित होकर मुखसे बाजा बजाता तथा स्वेच्छानुसार धार्मिक आलाप करते हुए भाँति-भाँतिके नृत्यका प्रदर्शन करता है, वह भगवान्‌का प्रिय है। इन भावोंके साथ जो श्रीहरिके लिये जागरण करता है, उसे नैमिष तथा कोटितीर्थका फल प्राप्त होता है। जो शान्तचित्तसे श्रीहरिको धूप-आरती दिखाते हुए रातमें जागरण करता है, वह सात द्वीपोंका अधिपति होता है।

ब्रह्महत्याके समान भी जो कोई पाप हों, वे सब श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये जागरण करनेपर नष्ट हो जाते हैं। एक ओर उत्तम दक्षिणाके साथ समाप्त होनेवाले सम्पूर्ण यज्ञ और दूसरी ओर देवाधिदेव श्रीकृष्णको प्रिय लगनेवाला एकादशीका जागरण—दोनों समान हैं।

जहाँ भगवान्‌के लिये जागरण किया जाता है वहाँ काशी, पुष्कर, प्रयाग, नैमिषारण्य, शालग्राम नामक महाक्षेत्र, अर्बुदारण्य (आबू), शूकरक्षेत्र (सोरों), मथुरा तथा सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। समस्त यज्ञ और चारों वेद भी श्रीहरिके निमित्त किये जानेवाले जागरणके स्थानपर उपस्थित होते हैं। गङ्गा, सरस्वती, तापी, यमुना, शतद्रू (सतलज), चन्द्रभागा तथा वितस्ता आदि सम्पूर्ण नदियाँ भी वहाँ जाती हैं। द्विजश्रेष्ठ! सरोवर, कुण्ड और समस्त समुद्र भी एकादशीको जागरणस्थानपर जाते हैं। जो मनुष्य श्रीकृष्णप्रीतिके लिये होनेवाले जागरणके समय वीणा आदि बाजोंसे हर्षमें भरकर नृत्य करते और पद गाते हैं, वे देवताओंके लिये भी आदरणीय होते हैं। इस प्रकार जागरण करके श्रीमहाविष्णुकी पूजा करे और द्वादशीको अपनी शक्तिके अनुसार कुछ वैष्णव पुरुषोंको निमन्त्रित करके उनके साथ बैठकर पारण करे।

द्वादशीको सदा पवित्र और मोक्षदायिनी समझना चाहिये। उस दिन प्रातःस्नान करके श्रीहरिकी पूजा करे और उन्हें निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर अपना व्रत समर्पण करे—

अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव।
प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥
(३९।८१-८२)

'केशव! मैं अज्ञानरूपी रतौंधीसे अंधा हो रहा हूँ; आप इस व्रतसे प्रसन्न हों और प्रसन्न होकर मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान करें।'

इसके बाद यथासंभव पारण करना चाहिये। पारण समाप्त होनेपर इच्छानुसार विहित कर्मोंका अनुष्ठान करे। नारद! यदि दिनमें पारणके समय थोड़ी भी द्वादशी न हो तो मुक्तिकामी पुरुषको रातको ही [पिछले पहरमें] पारण कर लेना चाहिये। ऐसे समयमें रात्रिको भोजन करनेका दोष नहीं लगता। रात्रिके पहले और पिछले पहरमें दिनकी भाँति कर्म कराने चाहिये। यदि पारणके दिन बहुत थोड़ी द्वादशी हो तो उषःकालमें ही प्रातःकाल तथा मध्याह्नकालकी भी संध्या कर लेनी चाहिये। इस पृथ्वीपर जिस मनुष्यने द्वादशी-व्रतको सिद्ध कर लिया है, उसका पुण्य-फल बतलानेमें मैं भी समर्थ नहीं हूँ। एकादशी देवी सब पुण्योंसे अधिक है तथा यह सर्वदा मोक्ष देनेवाली है। यह द्वादशी नामक व्रत महान् पुण्यदायक है। जो इसका साधन कर लेते हैं, वे महापुरुष समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं। अम्बरीष आदि सभी भक्त, जो इस भूमण्डलमें विख्यात हैं, द्वादशी-व्रतका साधन करके ही विष्णुधामको प्राप्त हुए हैं। यह माहात्म्य, जो मैंने तुम्हें बताया है, सत्य है! सत्य है!! सत्य है!!! श्रीविष्णुके समान कोई देवता नहीं है और द्वादशीके समान कोई तिथि नहीं है। इस तिथिको जो कुछ दान किया जाता, भोगा जाता तथा पूजन आदि किया जाता है, वह सब भगवान् माधवके पूजित होनेपर पूर्णताको प्राप्त होता है। अधिक क्या कहा जाय, भक्तवत्सल श्रीहरि द्वादशी-व्रत करनेवाले पुरुषोंकी कामना कल्पान्ततक पूर्ण करते रहते हैं। द्वादशीको किया हुआ सारा दान सफल होता है।

एकादशीके जया आदि भेद, नक्तव्रतका स्वरूप, एकादशीकी विधि, उत्पत्तिकथा और महिमाका वर्णन

नारदजीने पूछा—महादेव ! महाद्वादशीका उत्तम व्रत कैसा होता है ? सर्वेश्वर, प्रभो ! उसके व्रतसे जो कुछ भी फल प्राप्त होता है, उसे बतानेकी कृपा कीजिये ।

महादेवजीने कहा—ब्रह्मन् ! यह एकादशी महान् पुण्यफलको देनेवाली है । श्रेष्ठ मुनियोंको भी इसका अनुष्ठान करना चाहिये । विशेष-विशेष नक्षत्रोंका योग होनेपर यह तिथि जया, विजया, जयन्ती तथा पापनाशिनी—इन चार नामोंसे विख्यात होती है । ये सभी पापोंका नाश करनेवाली हैं । इनका व्रत अवश्य करना चाहिये । जब शुक्लपक्षकी एकादशीको 'पुनर्वसु' नक्षत्र हो तो वह उत्तम तिथि 'जया' कहलाती है । उसका व्रत करके मनुष्य निश्चय ही पापसे मुक्त हो जाता है । जब शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'श्रवण' नक्षत्र हो तो वह उत्तम तिथि 'विजया' के नामसे विख्यात होती है; इसमें किया हुआ दान और ब्राह्मण-भोजन सहस्र-गुना फल देनेवाला है तथा होम और उपवास तो सहस्र-गुनेसे भी अधिक फल देता है । जब शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'रोहिणी' नक्षत्र हो तो वह तिथि 'जयन्ती' कहलाती है; वह सब पापोंको हरनेवाली है । उस तिथिको पूजित होनेपर भगवान् गोविन्द निश्चय ही मनुष्यके सब पापोंको धो डालते हैं । जब कभी शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'पुष्य' नक्षत्र हो तो वह महापुण्यमयी 'पापनाशिनी' तिथि कहलाती है । जो एक वर्षतक प्रतिदिन एक प्रस्थ तिल दान करता है तथा जो केवल 'पापनाशिनी' एकादशीको उपवास करता है, उन दोनोंका पुण्य समान होता है । उस तिथिको पूजित होनेपर संसारके स्वामी सर्वेश्वर श्रीहरि संतुष्ट होते हैं तथा प्रत्यक्ष दर्शन भी देते हैं । उस दिन प्रत्येक पुण्यकर्मका अनन्त फल माना गया है । सगरनन्दन ककुत्स्थ, नहुष तथा राजा गाधिने उस तिथिको भगवान्‌की आराधना की थी, जिससे भगवान्‌ने इस पृथ्वीपर उन्हें सब कुछ दिया था । इस तिथिके सेवनसे मनुष्य सात जन्मोंके कायिक, वाचिक और मानसिक पापसे मुक्त हो जाता है । इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । पुष्य नक्षत्रसे युक्त एकमात्र पापनाशिनी एकादशीका व्रत करके मनुष्य एक हजार एकादशियोंके व्रतका फल प्राप्त कर लेता है । उस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और देवपूजा आदि जो कुछ भी किया जाता है, उसका अक्षय फल माना गया है । इसलिये प्रयत्न-पूर्वक इसका व्रत करना चाहिये । जिस समय धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर पञ्चम अश्वमेध यज्ञका स्नान कर चुके, उस समय उन्होंने यदुवंशावतंस भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार प्रश्न किया ।

युधिष्ठिर बोले—प्रभो ! नक्तव्रत तथा एकभुक्त व्रतका पुण्य एवं फल क्या है ? जनार्दन ! यह सब मुझे बताइये ।

श्रीभगवान्‌ने कहा—कुन्तीनन्दन ! हेमन्त ऋतुमें जब परम कल्याणमय मार्गशीर्ष मास आये, तब उसके कृष्णपक्ष-की द्वादशी तिथिको उपवास (व्रत) करना चाहिये । उसकी विधि इस प्रकार है—दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाला शुद्धचित्त पुरुष दशमीको सदा एकभुक्त रहे अथवा शौच-सन्तोषादि नियमोंके पालनपूर्वक नक्तव्रतके स्वरूपको जानकर उसके अनुसार एक बार भोजन करे । दिनके आठवें भागमें जब सूर्यका तेज मन्द पड़ जाता है,

उसे 'नक्त' जानना चाहिये । रातको भोजन करना 'नक्त' नहीं है । गृहस्थके लिये तारोंके दिखायी देनेपर नक्तभोजनका विधान है और संन्यासीके लिये दिनके आठवें भागमें; क्योंकि उसके लिये रातमें भोजनका निषेध है। कुन्तीनन्दन! दशमीकी रात व्यतीत होनेपर एकादशीको प्रातःकाल व्रत करनेवाला पुरुष व्रतका नियम ग्रहण करे और सबेरे तथा मध्याह्नको पवित्रताके लिये स्नान करे । कुएँका स्नान निम्न श्रेणीका है । बावलीमें स्नान करना मध्यम, पोखरेमें उत्तम तथा नदीमें उससे भी उत्तम माना गया है । जहाँ जलमें खड़ा होनेपर जल-जन्तुओंको पीड़ा होती हो, वहाँ स्नान करनेपर पाप और पुण्य बराबर होता है । यदि जलको छानकर शुद्ध कर ले तो घरपर भी स्नान करना उत्तम माना गया है । इसलिये पाण्डवश्रेष्ठ ! घरपर उक्त विधिसे स्नान करे । स्नानके पहले निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर शरीरमें मृत्तिका लगा ले—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसञ्चितम् ॥
(४० २८)

'वसुन्धरे ! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं । भगवान् विष्णुने भी वामन अवतार धारण कर तुम्हें अपने पैरोंसे नापा था । मृत्तिके ! मैंने पूर्वकालमें जो पाप सञ्चित किया है, उस मेरे पापको हर लो ।'

व्रती पुरुषको चाहिये कि वह एकचित्त और दृढ़सङ्कल्प होकर क्रोध तथा लोभका परित्याग करे । अन्त्यज, पाखण्डी, मिथ्यावादी, ब्राह्मणनिन्दक, अगम्या स्त्रीके साथ गमन करनेवाले अन्यान्य दुराचारी, परधनहारी तथा परस्त्रीगामी मनुष्योंसे वार्तालाप न करे । भगवान् केशवकी पूजा करके उन्हें नैवेद्य भोग लगाये । घरमें भक्तियुक्त मनसे दीपक जलाकर रखे । पार्थ ! उस दिन निद्रा और मैथुनका परित्याग करे । धर्मशास्त्रसे मनोरञ्जन करते हुए सम्पूर्ण दिन व्यतीत करे । नृपश्रेष्ठ ! भक्तियुक्त होकर रात्रिमें जागरण करे, ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे और प्रणाम करके उनसे त्रुटियोंके लिये क्षमा माँगे । जैसी कृष्णपक्षकी एकादशी है, वैसी ही शुक्लपक्षकी भी है । इसी विधिसे उसका भी व्रत करना चाहिये ।

पार्थ ! द्विजको उचित है कि वह शुक्ल और कृष्णपक्षकी एकादशीके व्रती लोगोंमें भेदबुद्धि न उत्पन्न करे । शङ्खोद्धार तीर्थमें स्नान करके भगवान् गदाधरका दर्शन करनेसे जो पुण्य होता है तथा संक्रान्तिके अवसरपर चार लाखका दान देकर जो पुण्य प्राप्त किया जाता है, वह सब एकादशी-व्रतकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं है । प्रभासक्षेत्रमें चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके अवसरपर स्नान दानसे जो पुण्य होता है, वह निश्चय ही एकादशीको उपवास करनेवाले मनुष्यको मिल जाता है । केदारक्षेत्रमें जल पीनेसे पुनर्जन्म नहीं होता । एकादशीका भी ऐसा ही माहात्म्य है । यह भी गर्भवासका निवारण करनेवाली है । पृथ्वीपर अश्वमेध यज्ञका जो फल होता है, उससे सौगुना अधिक फल एकादशी-व्रत करनेवालेको मिलता है । जिसके घरमें तपस्वी एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण भोजन करते हैं उसको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह एकादशी-व्रत करनेवालेको भी अवश्य मिलता है । वेदाङ्गोंके पारगामी विद्वान् ब्राह्मणको सहस्र गोदान करनेसे जो पुण्य होता है, उससे सौगुना पुण्य एकादशी-व्रत करनेवालेको प्राप्त होता है । इस प्रकार व्रतीको वह पुण्य प्राप्त होता है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है । रातको भोजन कर लेनेपर उससे आधा पुण्य प्राप्त होता है तथा दिनमें एक बार भोजन करनेसे देहधारियोंको नक्त-भोजनका आधा फल मिलता है । जीव जबतक भगवान् विष्णुके प्रिय दिवस एकादशीको उपवास नहीं करता, तभीतक तीर्थ, दान और नियम अपने महत्त्वकी गर्जना करते हैं । इसलिये पाण्डवश्रेष्ठ ! तुम इस व्रतका अनुष्ठान करो । कुन्तीनन्दन ! यह गोपनीय एवं उत्तम व्रत है, जिसका मैंने तुमसे वर्णन किया है । हजारों यज्ञोंका अनुष्ठान भी एकादशी-व्रतकी तुलना नहीं कर सकता ।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! पुण्यमयी एकादशी तिथि कैसे उत्पन्न हुई ? इस संसारमें क्यों पवित्र मानी गयी ? तथा देवताओंको कैसे प्रिय हुई ?

श्रीभगवान् बोले—कुन्तीनन्दन ! प्राचीन समयकी बात है, सत्ययुगमें मुर नामक दानव रहता था । वह बड़ा ही अद्भुत, अत्यन्त रौद्र तथा सम्पूर्ण देवताओंके लिये भयङ्कर था । उस कालरूपधारी दुरात्मा महासुरने इन्द्रको भी जीत लिया था । सम्पूर्ण देवता उससे परास्त होकर स्वर्गसे निकाले जा चुके थे और शंकित तथा भयभीत होकर पृथ्वीपर विचरा करते थे । एक दिन सब देवता महादेवजीके पास गये । वहाँ इन्द्रने भगवान् शिवके आगे सारा हाल कह सुनाया ।

इन्द्र बोले—महेश्वर ! ये देवता स्वर्गलोकसे भ्रष्ट

होकर पृथ्वीपर विचर रहे हैं । मनुष्योंमें रहकर इनकी शोभा नहीं होती । देव ! कोई उपाय बतलाइये । देवता किसका सहारा लें ?

महादेवजीने कहा—देवराज ! जहाँ सबको शरण देनेवाले, सबकी रक्षामें तत्पर रहनेवाले जगत्के स्वामी भगवान् गरुडध्वज विराजमान हैं, वहाँ जाओ । वे तुमलोगोंकी रक्षा करेंगे ।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर ! महादेवजीकी बात सुनकर परम बुद्धिमान् देवराज इन्द्र सम्पूर्ण देवताओंके साथ वहाँ गये । भगवान् गदाधर क्षीरसागरके जलमें सो रहे थे । उनका दर्शन करके इन्द्रने हाथ जोड़कर स्तुति आरम्भ की ।

इन्द्र बोले—देवदेवेश्वर ! आपको नमस्कार है । देवता और दानव दोनों ही आपकी वन्दना करते हैं । पुण्डरीकाक्ष ! आप दैत्योंके शत्रु हैं । मधुसूदन ! हमलोगोंकी रक्षा कीजिये । जगन्नाथ ! सम्पूर्ण देवता मुर नामक दानवसे भयभीत होकर आपकी शरणमें आये हैं । भक्तवत्सल ! हमें बचाइये । देवदेवेश्वर ! हमें बचाइये । जनार्दन ! हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । दानवोंका विनाश करनेवाले कमलनयन ! हमारी रक्षा कीजिये । प्रभो ! हम सब लोग आपके समीप आये हैं । आपकी ही शरणमें आ पड़े हैं । भगवन् ! शरणमें आये हुए देवताओंकी सहायता कीजिये । देव ! आप ही पति, आप ही मति, आप ही कर्ता और आप ही कारण हैं । आप ही सब लोगोंकी माता और आप ही इस जगत्के पिता हैं । भगवन् ! देवदेवेश्वर ! शरणागतवत्सल ! देवता भयभीत होकर आपकी शरणमें आये हैं । प्रभो ! अत्यन्त उग्र स्वभाववाले महाबली मुर नामक दैत्यने सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर इन्हें स्वर्गसे निकाल दिया है ।*

इन्द्रकी बात सुनकर भगवान् विष्णु बोले—'देवराज ! वह दानव कैसा है ? उसका रूप और बल कैसा है तथा उस दुष्टके रहनेका स्थान कहाँ है ?'

इन्द्र बोले—देवेश्वर ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीके वंशमें तालजङ्घ नामक एक महान् असुर उत्पन्न हुआ था, जो अत्यन्त भयङ्कर था । उसका पुत्र मुर दानवके नामसे विख्यात हुआ । वह भी अत्यन्त उत्कट, महापराक्रमी और देवताओंके लिये भयङ्कर है । चन्द्रावती नामसे प्रसिद्ध एक नगरी है, उसीमें स्थान बनाकर वह निवास करता है । उस दैत्यने समस्त देवताओंको परास्त करके स्वर्गलोकसे बाहर कर दिया है । उसने एक दूसरे ही इन्द्रको स्वर्गके सिंहासनपर बैठाया है । अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, वायु तथा वरुण भी उसने दूसरे ही बनाये हैं । जनार्दन ! मैं सच्ची बात बता रहा हूँ ।

* ॐ नमो देवदेवेश देवदानववन्दित ।
दैत्यारे पुण्डरीकाक्ष त्राहि नो मधुसूदन ॥
सुराः सर्वे समायाता भयभीताश्च दानवात् ।
शरणं त्वां जगन्नाथ त्राहि नो भक्तवत्सल ॥
त्राहि नो देवदेवेश त्राहि त्राहि जनार्दन ।
त्राहि वै पुण्डरीकाक्ष दानवानां विनाशक ॥
त्वत्समीपं गताः सर्वे त्वामेव शरणं प्रभो ।
शरणागतदेवानां साहाय्यं कुरु वै प्रभो ॥
त्वं पतिस्त्वं मतिर्देव त्वं कर्त्ता त्वं च कारणम् ।
त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता ॥
भगवन् देवदेवेश शरणागतवत्सल ।
शरणं तव चायाता भयभीताश्च देवताः ॥
देवता निर्जिताः सर्वाः स्वर्गभ्रष्टाः कृता विभो ।
अत्युग्रेण हि दैत्येन मुरनाम्ना महौजसा ॥
(४० । ५७-६३)

उसने सब कोई दूसरे ही कर लिये हैं। देवताओंको तो उसने प्रत्येक स्थानसे वञ्चित कर दिया है।

इन्द्रका कथन सुनकर भगवान् जनार्दनको बड़ा क्रोध हुआ। वे देवताओंको साथ लेकर चन्द्रावतीपुरीमें गये। देवताओंने देखा, दैत्यराज बारंबार गर्जना कर रहा है; उससे परास्त होकर सम्पूर्ण देवता दसों दिशाओंमें भाग गये। अब वह दानव भगवान् विष्णुको देखकर बोला, 'खड़ा रह, खड़ा रह।' उसकी ललकार सुनकर भगवान्के नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। वे बोले—'अरे दुराचारी दानव! मेरी इन भुजाओंको देख।' यह कहकर श्रीविष्णुने अपने

दिव्य बाणोंसे सामने आये हुए दुष्ट दानवोंको मारना आरम्भ किया। दानव भयसे विह्वल हो उठे। पाण्डुनन्दन! तत्पश्चात् श्रीविष्णुने दैत्य-सेनापर चक्रका प्रहार किया। उससे छिन्न-भिन्न होकर सैकड़ों योद्धा मौतके मुखमें चले गये। इसके बाद भगवान् मधुसूदन बदरिकाश्रमको चले गये। वहाँ सिंहावती नामकी गुफा थी, जो बारह योजन लंबी थी। पाण्डुनन्दन! उस गुफामें एक ही दरवाजा था। भगवान् विष्णु उसीमें सो रहे। दानव मुर भगवान्को मार डालनेके उद्योगमें लगा था। वह उनके पीछे लगा रहा। वहाँ पहुँचकर उसने भी उसी गुहामें प्रवेश किया। वहाँ भगवान्को सोते देख उसे बड़ा हर्ष हुआ। उसने सोचा, 'यह दानवोंको भय देनेवाला देवता है। अतः निस्सन्देह इसे मार डालूँगा।' युधिष्ठिर! दानवके इस प्रकार विचार करते ही भगवान् विष्णुके शरीरसे एक कन्या प्रकट हुई, जो बड़ी ही रूपवती, सौभाग्यशालिनी तथा दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त थी। वह भगवान्के तेजके अंशसे उत्पन्न हुई थी। उसका बल और पराक्रम महान् था। युधिष्ठिर! दानवराज मुरने उस कन्याको देखा। कन्याने युद्धका विचार करके दानवके साथ युद्धके लिये याचना की। युद्ध छिड़ गया। कन्या सब प्रकारकी युद्धकलामें निपुण थी! वह मुर नामक महान्

असुर उसके हुंकारमात्रसे राखका ढेर हो गया। दानवके मारे जानेपर भगवान् जाग उठे। उन्होंने दानवको धरतीपर पड़ा देख, पूछा—'मेरा यह शत्रु अत्यन्त उग्र और भयङ्कर था, किसने इसका वध किया है?'

कन्या बोली—स्वामिन्! आपके ही प्रसादसे मैंने इस महादैत्यका वध किया है।

श्रीभगवान्ने कहा—कल्याणी! तुम्हारे इस कर्मसे

तीनों लोकोंके मुनि और देवता आनन्दित हुए हैं ! अतः तुम्हारे मनमें जैसी रुचि हो, उसके अनुसार मुझसे कोई वर माँगो; देवदुर्लभ होनेपर भी वह वर मैं तुम्हें दूँगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।

वह कन्या साक्षात् एकादशी ही थी । उसने कहा, 'प्रभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं आपकी कृपासे सब तीर्थोंमें प्रधान, समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाली तथा सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाली देवी होऊँ । जनार्दन ! जो लोग आपमें भक्ति रखते हुए मेरे दिनको उपवास करेंगे, उन्हें सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त हो । माधव ! जो लोग उपवास, नक्त अथवा एकभुक्त करके मेरे व्रतका पालन करें, उन्हें आप धन, धर्म और मोक्ष प्रदान कीजिये ।'

श्रीविष्णु बोले—कल्याणी ! तुम जो कुछ कहती हो, वह सब पूर्ण होगा ।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर ! ऐसा वर पाकर महाव्रता एकादशी बहुत प्रसन्न हुई । दोनों पक्षोंकी एकादशी समान रूपसे कल्याण करनेवाली है । इसमें शुक्ल और कृष्णका भेद नहीं करना चाहिये । यदि उदयकालमें थोड़ी-सी एकादशी, मध्यमें पूरी द्वादशी और अन्तमें किञ्चित् त्रयोदशी हो तो वह 'त्रिस्पृशा' एकादशी कहलाती है । वह भगवान्‌को बहुत ही प्रिय है । यदि एक त्रिस्पृशा एकादशीको उपवास कर लिया जाय तो एक सहस्र एकादशी-व्रतोंका फल प्राप्त होता है तथा इसी प्रकार द्वादशीमें पारण करनेपर सहस्रगुना फल माना गया है । अष्टमी, एकादशी, षष्ठी, तृतीया और चतुर्दशी—ये यदि पूर्व तिथिसे विद्ध हों तो उनमें व्रत नहीं करना चाहिये । परवर्तिनी तिथिसे युक्त होनेपर ही इनमें उपवासका विधान है । पहले दिन दिनमें और रातमें भी एकादशी हो तथा दूसरे दिन केवल प्रातःकाल एक दण्ड एकादशी रहे तो पहली तिथिका परित्याग करके दूसरे दिनकी द्वादशीयुक्त एकादशीको ही उपवास करना चाहिये । यह विधि मैंने दोनों पक्षोंकी एकादशीके लिये बतायी है । जो मनुष्य एकादशीको उपवास करता है, वह वैकुण्ठधाममें, जहाँ साक्षात् भगवान् गरुडध्वज विराजमान हैं, जाता है । जो मानव हर समय एकादशीके माहात्म्यका पाठ करता है, उसे सहस्र गोदानोंके पुण्यका फल प्राप्त होता है । जो दिन या रातमें भक्ति-पूर्वक इस माहात्म्यका श्रवण करते हैं, वे निस्सन्देह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाते हैं । एकादशीके समान पापनाशक व्रत दूसरा कोई नहीं है ।

मार्गशीर्ष शुक्लपक्षकी 'मोक्षा' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिर बोले—देवदेवेश्वर ! मैं पूछता हूँ—मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है ? कौन-सी विधि है तथा उसमें किस देवताका पूजन किया जाता है ? स्वामिन् ! यह सब यथार्थरूपसे बताइये ।

श्रीकृष्णने कहा—नृपश्रेष्ठ ! मार्गशीर्ष मासके कृष्ण-पक्षमें 'उत्पत्ति' नामकी एकादशी होती है, जिसका वर्णन मैंने तुम्हारे समक्ष कर दिया है । अब शुक्लपक्षकी एकादशीका वर्णन करूँगा, जिसके श्रवणमात्रसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है । उसका नाम है—'मोक्षा' एकादशी, जो सब पापोंका अपहरण करनेवाली है । राजन् ! उस दिन यत्नपूर्वक तुलसीकी मञ्जरी तथा धूप-दीपादिसे भगवान् दामोदरका पूजन करना चाहिये । पूर्वोक्त विधिसे ही दशमी और एकादशीके नियमका पालन करना उचित है । 'मोक्षा' एकादशी बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली है । उस दिन रात्रिमें मेरी प्रसन्नताके लिये नृत्य, गीत और स्तुतिके द्वारा जागरण करना चाहिये । जिसके पितर पापवश नीच योनिमें पड़े हों, वे इसका पुण्य दान करनेसे मोक्षको प्राप्त होते हैं । इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । पूर्वकालकी बात है, वैष्णवोंसे विभूषित परम रमणीय चम्पक नगरमें वैखानस नामक राजा रहते थे । वे अपनी प्रजाका पुत्रकी भाँति पालन करते थे । इस प्रकार राज्य करते हुए राजाने एक दिन रातको स्वप्नमें अपने पितरोंको नीच योनिमें पड़ा हुआ देखा । उन सबको इस अवस्थामें देखकर राजाके मनमें बड़ा विस्मय हुआ और प्रातःकाल ब्राह्मणोंसे उन्होंने उस स्वप्नका सारा हाल कह सुनाया ।

राजा बोले—ब्राह्मणो ! मैंने अपने पितरोंको नरकमें गिरा देखा है । वे बारंबार रोते हुए मुझसे यों कह रहे थे कि 'तुम हमारे तनुज हो, इसलिये इस नरक-समुद्रसे

हमलोगोंका उद्धार करो।' द्विजवरो! इस रूपमें मुझे पितरोंके दर्शन हुए हैं। इससे मुझे चैन नहीं मिलता। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मेरा हृदय रुँधा जा रहा है। द्विजोत्तमो! वह व्रत, वह तप और वह योग, जिससे मेरे पूर्वज तत्काल नरकसे छुटकारा पा जायँ, बतानेकी कृपा करें। मुझ बलवान् एवं साहसी पुत्रके जीते-जी मेरे माता-पिता घोर नरकमें पड़े हुए हैं! अतः ऐसे पुत्रसे क्या लाभ है।

ब्राह्मण बोले—राजन्! यहाँसे निकट ही पर्वत मुनिका महान् आश्रम है। वे भूत और भविष्यके भी ज्ञाता हैं। नृपश्रेष्ठ! आप उन्हींके पास चले जाइये।

ब्राह्मणोंकी बात सुनकर महाराज वैखानस शीघ्र ही पर्वत मुनिके आश्रमपर गये और वहाँ उन मुनिश्रेष्ठको देखकर उन्होंने दण्डवत् प्रणाम करके मुनिके चरणोंका स्पर्श किया। मुनिने भी राजासे राज्यके सातों[1] अङ्गोंकी कुशल पूछी।

राजा बोले—स्वामिन्! आपकी कृपासे मेरे राज्यके सातों अङ्ग सकुशल हैं। किन्तु मैंने स्वप्नमें देखा है कि मेरे पितर नरकमें पड़े हैं; अतः बताइये किस पुण्यके प्रभावसे उनका वहाँसे छुटकारा होगा?

राजाकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ पर्वत एक मुहूर्त्ततक ध्यानस्थ रहे। इसके बाद वे राजासे बोले—'महाराज! मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें जो 'मोक्षा' नामकी एकादशी होती है, तुम सब लोग उसका व्रत करो और उसका पुण्य पितरोंको दे डालो। उस पुण्यके प्रभावसे उनका नरकसे उद्धार हो जायगा।'

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर! मुनिकी यह बात सुनकर राजा पुनः अपने घर लौट आये। जब उत्तम मार्गशीर्ष मास आया, तब राजा वैखानसने मुनिके कथनानुसार 'मोक्षा' एकादशीका व्रत करके उसका पुण्य समस्त पितरोंसहित पिताको दे दिया। पुण्य देते ही क्षणभरमें आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। वैखानसके पिता पितरोंसहित नरकसे छुटकारा पा गये और आकाशमें आकर राजाके प्रति यह पवित्र वचन बोले—'बेटा! तुम्हारा कल्याण हो!' यह कहकर वे स्वर्गमें चले गये। राजन्! जो इस प्रकार कल्याणमयी 'मोक्षा' एकादशीका व्रत करता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और मरनेके बाद वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यह मोक्ष देनेवाली 'मोक्षा' एकादशी मनुष्योंके लिये चिन्तामणिके समान समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। इस माहात्म्यके पढ़ने और सुननेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है।

पौष मासकी 'सफला' और 'पुत्रदा' नामक एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—स्वामिन्! पौष मासके कृष्णपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है? उसकी क्या विधि है तथा उसमें किस देवताकी पूजा की जाती है! यह बताइये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजेन्द्र! बतलाता हूँ, सुनो; बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे भी मुझे उतना संतोष नहीं होता, जितना एकादशी-व्रतके अनुष्ठानसे होता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके एकादशीका व्रत करना चाहिये। पौष मासके कृष्णपक्षमें 'सफला' नामकी एकादशी होती है। उस दिन पूर्वोक्त विधानसे ही विधिपूर्वक भगवान् नारायणकी पूजा करनी चाहिये। एकादशी कल्याण करनेवाली है। अतः इसका व्रत अवश्य करना उचित है। जैसे नागोंमें शेषनाग, पक्षियोंमें गरुड़, देवताओंमें श्रीविष्णु तथा मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सम्पूर्ण व्रतोंमें एकादशी तिथि श्रेष्ठ है। राजन्! 'सफला' एकादशीको नाम-मन्त्रोंका उच्चारण करके फलोंके द्वारा श्रीहरिका पूजन करे। नारियलके फल, सुपारी, बिजौरा नीबू, जमीरा नीबू, अनार, सुन्दर आँवला, लौंग, बेर तथा विशेषतः आमके फलोंसे देवदेवेश्वर श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार धूप-दीपसे भी भगवान्की अर्चना करे। 'सफला' एकादशीको विशेषरूपसे दीप-दान करनेका विधान है। रातको वैष्णव पुरुषोंके साथ जागरण करना चाहिये। जागरण करनेवालेको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह हजारों वर्ष तपस्या करनेसे भी नहीं मिलता।

१. राजा, मन्त्री, राष्ट्र, किला, खजाना, सेना और मित्रवर्ग—ये ही परस्पर उपकार करनेवाले राज्यके सात अङ्ग हैं।

नृपश्रेष्ठ ! अब 'सफला' एकादशीकी शुभकारिणी कथा सुनो। चम्पावती नामसे विख्यात एक पुरी है, जो कभी राजा माहिष्मतकी राजधानी थी। राजर्षि माहिष्मतके पाँच पुत्र थे। उनमें जो ज्येष्ठ था, वह सदा पापकर्ममें ही लगा रहता था। परस्त्रीगामी और वेश्यासक्त था। उसने पिताके धनको पापकर्ममें ही खर्च किया। वह सदा दुराचारपरायण तथा ब्राह्मणोंका निन्दक था। वैष्णवों और देवताओंकी भी हमेशा निन्दा किया करता था। अपने पुत्रको ऐसा पापाचारी देखकर राजा माहिष्मतने राजकुमारोंमें उसका नाम लुम्भक रख दिया। फिर पिता और भाइयोंने मिलकर उसे राज्यसे बाहर निकाल दिया। लुम्भक उस नगरसे निकलकर गहन वनमें चला गया। वहीं रहकर उस पापीने प्रायः समूचे नगरका धन लूट लिया। एक दिन जब वह चोरी करनेके लिये नगरमें आया तो रातमें पहरा देनेवाले सिपाहियोंने उसे पकड़ लिया। किन्तु जब उसने अपनेको राजा माहिष्मतका पुत्र बतलाया तो सिपाहियोंने उसे छोड़ दिया। फिर वह पापी वनमें लौट आया और प्रतिदिन मांस तथा वृक्षोंके फल खाकर जीवन-निर्वाह करने लगा। उस दुष्टका विश्राम-स्थान पीपल वृक्षके निकट था। वहाँ बहुत वर्षोंका पुराना पीपलका वृक्ष था। उस वनमें वह वृक्ष एक महान् देवता माना जाता था। पापबुद्धि लुम्भक वहीं निवास करता था।

बहुत दिनोंके पश्चात् एक दिन किसी संचित पुण्य-के प्रभावसे उसके द्वारा एकादशीके व्रतका पालन हो गया। पौष मासमें कृष्णपक्षकी दशमीके दिन पापिष्ठ लुम्भकने वृक्षोंके फल खाये और वस्त्रहीन होनेके कारण रातभर जाड़ेका कष्ट भोगा। उस समय न तो उसे नींद आयी और न आराम ही मिला। वह निष्प्राण-सा हो रहा था। सूर्योदय होनेपर भी उस पापीको होश नहीं हुआ। 'सफला' एकादशीके दिन भी लुम्भक बेहोश पड़ा रहा। दोपहर होनेपर उसे चेतना प्राप्त हुई। फिर इधर-उधर दृष्टि डालकर वह आसनसे उठा और लँगड़ेकी भाँति पैरोंसे बार-बार लड़खड़ाता हुआ वनके भीतर गया। वह भूखसे दुर्बल और पीड़ित हो रहा था। राजन् ! उस समय लुम्भक बहुत-से फल लेकर ज्यों ही विश्रामस्थानपर लौटा, त्यों ही सूर्यदेव अस्त हो गये। तब उसने वृक्षकी जड़में बहुत-से फल निवेदन करते हुए कहा—'इन फलोंसे लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु संतुष्ट हों।' यों कहकर लुम्भकने रातभर नींद नहीं ली। इस प्रकार अनायास ही उसने इस व्रतका पालन कर लिया। उस समय सहसा आकाशवाणी हुई—'राजकुमार! तुम 'सफला' एकादशीके प्रसादसे राज्य और पुत्र प्राप्त करोगे।' 'बहुत अच्छा' कहकर उसने वह वरदान स्वीकार किया। इसके बाद उसका रूप दिव्य हो गया। तबसे उसकी उत्तम बुद्धि भगवान् विष्णुके भजनमें लग गयी। दिव्य आभूषणोंकी शोभासे सम्पन्न होकर उसने अकण्टक राज्य प्राप्त किया और पंद्रह वर्षोंतक वह उसका संचालन करता रहा। उस समय भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उसके मनोज्ञ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह बड़ा हुआ, तब लुम्भकने तुरंत ही राज्यकी ममता छोड़कर उसे पुत्रको सौंप दिया और वह भगवान् श्रीकृष्णके समीप चला गया, जहाँ जाकर मनुष्य कभी शोकमें नहीं पड़ता। राजन् ! इस प्रकार जो 'सफला' एकादशीका उत्तम व्रत करता है, वह इस लोकमें सुख भोगकर मरनेके पश्चात् मोक्षको प्राप्त होता है। संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जो 'सफला' एकादशीके व्रतमें लगे रहते हैं। उन्हींका जन्म सफल है। महाराज ! इसकी महिमाको पढ़ने, सुनने तथा उसके अनुसार आचरण करनेसे मनुष्य राजसूय यज्ञका फल पाता है।

युधिष्ठिर बोले—श्रीकृष्ण ! आपने शुभकारिणी 'सफला' एकादशीका वर्णन किया। अब कृपा करके शुक्ल-पक्षकी एकादशीका महत्त्व बतलाइये। उसका क्या नाम है ? कौन-सी विधि है ? तथा उसमें किस देवताका पूजन किया जाता है ?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! पौपके शुक्लपक्ष-की जो एकादशी है, उसे बतलाता हूँ; सुनो। महाराज ! संसारके हितकी इच्छासे मैं इसका वर्णन करता हूँ। राजन् ! पूर्वोक्त विधिसे ही यत्नपूर्वक इसका व्रत करना चाहिये। इसका नाम 'पुत्रदा' है। यह सब पापोंको हरनेवाली उत्तम तिथि है। समस्त कामनाओं तथा सिद्धियोंके दाता भगवान् नारायण इस तिथिके अधिदेवता हैं। चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीमें इससे बढ़कर दूसरी कोई तिथि नहीं है। पूर्वकालकी बात है, भद्रावती पुरीमें राजा सुकेतुमान् राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम चम्पा था। राजाको बहुत समयतक कोई वंशधर पुत्र नहीं प्राप्त हुआ। इसलिये दोनों पति-पत्नी सदा चिन्ता और शोकमें डूबे रहते थे। राजाके पितर उनके दिये हुए जलको शोकोच्छ्वाससे गरम करके पीते थे। 'राजाके बाद और कोई ऐसा नहीं दिखायी देता,

जो हमलोगोंका तर्पण करेगा' यह सोच-सोचकर पितर दुखी रहते थे।

एक दिन राजा घोड़ेपर सवार हो गहन वनमें चले गये। पुरोहित आदि किसीको भी इस बातका पता न था। मृग और पक्षियोंसे सेवित उस सघन काननमें राजा भ्रमण करने लगे। मार्गमें कहीं सियारकी बोली सुनायी पड़ती थी तो कहीं उल्लुओंकी। जहाँ-तहाँ रीछ और मृग दृष्टिगोचर हो रहे थे। इस प्रकार घूम-घूमकर राजा वनकी शोभा देख रहे थे, इतनेमें दोपहर हो गया। राजाको भूख और प्यास सताने लगी। वे जलकी खोजमें इधर-उधर दौड़ने लगे। किसी पुण्यके प्रभावसे उन्हें एक उत्तम सरोवर दिखायी दिया, जिसके समीप मुनियोंके बहुत-से आश्रम थे। शोभाशाली नरेशने उन आश्रमोंकी ओर देखा। उस समय शुभकी सूचना देनेवाले शकुन होने लगे। राजाका दाहिना नेत्र और दाहिना हाथ फड़कने लगा, जो उत्तम फलकी सूचना दे रहा था। सरोवरके तटपर बहुत-से मुनि वेद-पाठ कर रहे थे। उन्हें देखकर राजाको बड़ा हर्ष हुआ। वे घोड़ेसे

उतरकर मुनियोंके सामने खड़े हो गये और पृथक्-पृथक् उन सबकी वन्दना करने लगे। वे मुनि उत्तम व्रतका पालन करनेवाले थे। जब राजाने हाथ जोड़कर बारंबार दण्डवत् किया, तब मुनि बोले—'राजन्! हमलोग तुमपर प्रसन्न हैं।'

राजा बोले—आपलोग कौन हैं? आपके नाम क्या हैं तथा आपलोग किसलिये यहाँ एकत्रित हुए हैं? यह सब सच-सच बताइये।

मुनि बोले—राजन्! हमलोग विश्वेदेव हैं, यहाँ स्नानके लिये आये हैं। माघ निकट आया है। आजसे पाँचवें दिन माघका स्नान आरम्भ हो जायगा। आज ही 'पुत्रदा' नामकी एकादशी है, जो व्रत करनेवाले मनुष्योंको पुत्र देती है।

राजाने कहा—विश्वेदेवगण! यदि आपलोग प्रसन्न हैं तो मुझे पुत्र दीजिये।

मुनि बोले—राजन्! आजके ही दिन 'पुत्रदा' नामकी एकादशी है। इसका व्रत बहुत विख्यात है। तुम आज इस उत्तम व्रतका पालन करो। महाराज! भगवान् केशवके प्रसादसे तुम्हें अवश्य पुत्र प्राप्त होगा।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर! इस प्रकार उन मुनियोंके कहनेसे राजाने उत्तम व्रतका पालन किया। महर्षियोंके उपदेशके अनुसार विधिपूर्वक पुत्रदा एकादशीका अनुष्ठान किया। फिर द्वादशीको पारण करके मुनियोंके चरणोंमें बारंबार मस्तक झुकाकर राजा अपने घर आये। तदनन्तर रानीने गर्भ धारण किया। प्रसवकाल आनेपर पुण्यकर्मा राजाको तेजस्वी पुत्र प्राप्त हुआ, जिसने अपने गुणोंसे पिताको संतुष्ट कर दिया। वह प्रजाओंका पालक हुआ। इसलिये राजन्! 'पुत्रदा'का उत्तम व्रत अवश्य करना चाहिये। मैंने लोगोंके हितके लिये तुम्हारे सामने इसका वर्णन किया है। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर 'पुत्रदा'का व्रत करते हैं, वे इस लोकमें पुत्र पाकर मृत्युके पश्चात् स्वर्गगामी होते हैं। इस माहात्म्यको पढ़ने और सुननेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है।

माघ मासकी 'षट्तिला' और 'जया' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा-जगन्नाथ ! श्रीकृष्ण ! आदिदेव ! जगत्पते ! माघ मासके कृष्ण पक्षमें कौन-सी एकादशी होती है ? उसके लिये कैसी विधि है ? तथा उसका फल क्या है ? महाप्राज्ञ ! कृपा करके ये सब बातें बताइये ।

श्रीभगवान् बोले-नृपश्रेष्ठ ! सुनो, माघ मासके कृष्ण पक्षकी जो एकादशी है, वह 'षट्तिला'के नामसे विख्यात है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है । अब तुम 'षट्तिला'की पापहारिणी कथा सुनो, जिसे मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यने दाल्भ्यसे कहा था ।

दाल्भ्यने पूछा-ब्रह्मन् ! मृत्युलोकमें आये हुए प्राणी प्रायः पापकर्म करते हैं । उन्हें नरकमें न जाना पड़े, इसके लिये कौन-सा उपाय है ? बतानेकी कृपा करें ।

पुलस्त्यजी बोले-महाभाग ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है, बतलाता हूँ; सुनो । माघ मास आनेपर मनुष्यको चाहिये कि वह नहा-धोकर पवित्र हो इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए काम, क्रोध, अहंकार, लोभ और चुगुली आदि बुराइयोंको त्याग दे । देवाधिदेव ! भगवान्‌का स्मरण करके जलसे पैर धोकर भूमिपर पड़े हुए गोबरका संग्रह करे । उसमें तिल और कपास छोड़कर एक सौ आठ पिंडिकाएँ बनाये । फिर माघमें जब आर्द्रा या मूल नक्षत्र आये, तब कृष्ण पक्षकी एकादशी करनेके लिये नियम ग्रहण करे । भलीभाँति स्नान करके पवित्र हो शुद्धभावसे देवाधिदेव श्रीविष्णुकी पूजा करे । कोई भूल हो जानेपर श्रीकृष्णका नामोच्चारण करे । रातको जागरण और होम करे । चन्दन, अरगजा, कपूर, नैवेद्य आदि सामग्रीसे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवदेवेश्वर श्रीहरिकी पूजा करे । तत्पश्चात् भगवान्‌का स्मरण करके बारंबार श्रीकृष्णनामका उच्चारण करते हुए कुम्हड़े, नारियल अथवा बिजौरेके फलसे भगवान्‌को विधिपूर्वक पूजकर अर्घ्य दे । अन्य सब सामग्रियोंके अभावमें सौ सुपारियोंके द्वारा भी पूजन और अर्घ्यदान किये जा सकते हैं । अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

कृष्ण कृष्ण कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव ।
संसारार्णवमग्नानां प्रसीद पुरुषोत्तम ॥
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज ॥
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते ।
(४४ । १८-२०)

'सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप बड़े दयालु हैं । हम आश्रयहीन जीवोंके आप आश्रयदाता होइये । पुरुषोत्तम ! हम संसार-समुद्रमें डूब रहे हैं, आप हमपर प्रसन्न होइये । कमलनयन ! आपको नमस्कार है, विश्वभावन ! आपको नमस्कार है । सुब्रह्मण्य ! महापुरुष ! सबके पूर्वज ! आपको नमस्कार है । जगत्पते ! आप लक्ष्मीजीके साथ मेरा दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार करें ।'

तत्पश्चात् ब्राह्मणकी पूजा करे । उसे जलका घड़ा दान करे । साथ ही छाता, जूता और वस्त्र भी दे । दान करते समय ऐसा कहे—'इस दानके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों ।' अपनी शक्तिके अनुसार श्रेष्ठ ब्राह्मणको काली गौ दान करे । द्विजश्रेष्ठ ! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह तिलसे भरा हुआ पात्र भी दान करे । उन तिलोंके बोनेपर उनसे जितनी शाखाएँ पैदा हो सकती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है । तिलसे स्नान करे, तिलका उबटन लगाये, तिलसे होम करे, तिल मिलाया हुआ जल पिये, तिलका दान करे और तिलको भोजनके काममें ले । इस प्रकार छः कामोंमें तिलका उपयोग करनेसे यह एकादशी 'षट्तिला' कहलाती है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है ।*

युधिष्ठिरने पूछा-भगवन् ! आपने माघ मासके कृष्ण पक्षकी 'षट्तिला' एकादशीका वर्णन किया । अब कृपा करके यह बताइये कि शुक्ल पक्षमें कौन-सी एकादशी होती है ? उसकी विधि क्या है ? तथा उसमें किस देवताका पूजन किया जाता है ?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले-राजेन्द्र ! बतलाता हूँ, सुनो । माघ मासके शुक्ल पक्षमें जो एकादशी होती है, उसका

* तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी ।
तिलदाता च भोक्ता च षट्तिला पापनाशिनी ॥
(४४ । २४)

नाम 'जया' है। वह सब पापोंको हरनेवाली उत्तम तिथि है। पवित्र होनेके साथ ही पापोंका नाश करनेवाली है तथा मनुष्योंको भोग और मोक्ष प्रदान करती है। इतना ही नहीं, वह ब्रह्महत्या-जैसे पाप तथा पिशाचत्वका भी विनाश करनेवाली है। इसका व्रत करनेपर मनुष्योंको कभी प्रेत-योनिमें नहीं जाना पड़ता। इसलिये राजन्! प्रयत्नपूर्वक 'जया' नामकी एकादशीका व्रत करना चाहिये।

एक समयकी बात है, स्वर्गलोकमें देवराज इन्द्र राज्य करते थे। देवगण पारिजात वृक्षोंसे भरे हुए नन्दनवनमें अप्सराओंके साथ विहार कर रहे थे। पचास करोड़ गन्धर्वोंके नायक देवराज इन्द्रने स्वेच्छानुसार वनमें विहार करते हुए बड़े हर्षके साथ नृत्यका आयोजन किया। उसमें गन्धर्व गान कर रहे थे, जिनमें पुष्पदन्त, चित्रसेन तथा उसका पुत्र—ये तीन प्रधान थे। चित्रसेनकी स्त्रीका नाम मालिनी था। मालिनीसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जो पुष्पवन्तीके नामसे विख्यात थी। पुष्पदन्त गन्धर्वके एक पुत्र था, जिसको लोग माल्यवान् कहते थे। माल्यवान् पुष्पवन्तीके रूपपर अत्यन्त मोहित था। ये दोनों भी इन्द्रके संतोषार्थ नृत्य करनेके लिये आये थे। इन दोनोंका गान हो रहा था, इनके साथ अप्सराएँ भी थीं। परस्पर अनुरागके कारण ये दोनों मोहके वशीभूत हो गये। चित्तमें भ्रान्ति आ गयी। इसलिये वे शुद्ध गान न गा सके। कभी ताल भंग हो जाता और कभी गीत बंद हो जाता था। इन्द्रने इस प्रमादपर विचार किया और इसमें अपना अपमान समझकर वे कुपित हो गये। अतः इन दोनोंको शाप देते हुए बोले—'ओ मूर्खो! तुम दोनोंको धिक्कार है! तुमलोग पतित और मेरी आज्ञा भंग करनेवाले हो; अतः पति-पत्नीके रूपमें रहते हुए पिशाच हो जाओ।'

इन्द्रके इस प्रकार शाप देनेपर इन दोनोंके मनमें बड़ा दुःख हुआ। वे हिमालय पर्वतपर चले गये और पिशाचयोनिको पाकर भयङ्कर दुःख भोगने लगे। शारीरिक पातकसे उत्पन्न तापसे पीड़ित होकर दोनों ही पर्वतकी कन्दराओंमें विचरते रहते थे। एक दिन पिशाचने अपनी पत्नी पिशाचीसे कहा—'हमने कौन-सा पाप किया है, जिससे यह पिशाच-योनि प्राप्त हुई है? नरकका कष्ट अत्यन्त भयङ्कर है तथा पिशाच-योनि भी बहुत दुःख देनेवाली है। अतः पूर्ण प्रयत्न करके पापसे बचना चाहिये।'

इस प्रकार चिन्तामग्न होकर वे दोनों दुःखके कारण सूखते जा रहे थे। दैवयोगसे उन्हें माघ मासकी एकादशी तिथि प्राप्त हो गयी। 'जया' नामसे विख्यात तिथि, जो सब तिथियोंमें उत्तम है, आयी। उस दिन उन दोनोंने सब प्रकारके आहार त्याग दिये। जलपानतक नहीं किया। किसी जीवकी हिंसा नहीं की, यहाँतक कि फल भी नहीं खाया। निरन्तर दुःखसे युक्त होकर वे एक पीपलके समीप बैठे रहे। सूर्यास्त हो गया। उनके प्राण लेनेवाली भयङ्कर रात उपस्थित हुई। उन्हें नींद नहीं आयी। वे रति या और कोई सुख भी नहीं पा सके। सूर्योदय हुआ। द्वादशी-का दिन आया। उन पिशाचोंके द्वारा 'जया' के उत्तम व्रतका पालन हो गया। उन्होंने रातमें जागरण भी किया था। उस व्रतके प्रभावसे तथा भगवान् विष्णुकी शक्तिसे उन दोनोंकी पिशाचता दूर हो गयी। पुष्पवन्ती और माल्यवान् अपने पूर्वरूपमें आ गये। उनके हृदयमें वही पुराना स्नेह उमड़ रहा था। उनके शरीरपर पहले-ही-जैसे अलङ्कार शोभा पा रहे थे। वे दोनों मनोहर रूप धारण करके विमानपर बैठे और स्वर्गलोकमें चले गये। वहाँ देवराज इन्द्रके सामने जाकर दोनोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें प्रणाम किया। उन्हें इस रूपमें उपस्थित देखकर इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा—'बताओ, किस पुण्यके प्रभावसे तुम दोनोंका पिशाचत्व दूर हुआ है। तुम मेरे शापको प्राप्त हो चुके थे, फिर किस देवताने तुम्हें उससे छुटकारा दिलाया है?'

माल्यवान् बोला—स्वामिन्! भगवान् वासुदेवकी कृपा तथा 'जया' नामक एकादशीके व्रतसे हमारी पिशाचता दूर हुई है।

इन्द्रने कहा—तो अब तुम दोनों मेरे कहनेसे सुधापान करो। जो लोग एकादशीके व्रतमें तत्पर और भगवान् श्रीकृष्णके शरणागत होते हैं, वे हमारे भी पूजनीय हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! इस कारण एकादशीका व्रत करना चाहिये। नृपश्रेष्ठ! 'जया' ब्रह्महत्याका पाप भी दूर करनेवाली है। जिसने 'जया' का व्रत किया है, उसने सब प्रकारके दान दे दिये और सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया। इस माहात्म्यके पढ़ने और सुननेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है।

फाल्गुन मासकी 'विजया' तथा 'आमलकी' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा-वासुदेव ! फाल्गुनके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ? कृपा करके बताइये ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले-युधिष्ठिर ! एक बार नारदजीने कमलके आसनपर विराजमान होनेवाले ब्रह्माजीसे प्रश्न किया—'सुरश्रेष्ठ ! फाल्गुनके कृष्णपक्षमें जो 'विजया' नामकी एकादशी होती है, कृपया उसके पुण्यका वर्णन कीजिये ।'

ब्रह्माजीने कहा—नारद ! सुनो—मैं एक उत्तम कथा सुनाता हूँ, जो पापोंका अपहरण करनेवाली है । यह व्रत बहुत ही प्राचीन, पवित्र और पापनाशक है । यह 'विजया' नामकी एकादशी राजाओंको विजय प्रदान करती है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । पूर्वकालकी बात है, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी चौदह वर्षोंके लिये वनमें गये और वहाँ पञ्चवटीमें सीता तथा लक्ष्मणके साथ रहने लगे । वहाँ रहते समय रावणने चपलतावश विजयात्मा श्रीरामकी तपस्विनी पत्नी सीताको हर लिया । उस दुःखसे श्रीराम व्याकुल हो उठे । उस समय सीताकी खोज करते हुए वे वनमें घूमने लगे । कुछ दूर जानेपर उन्हें जटायु मिले, जिनकी आयु समाप्त हो चुकी थी । इसके बाद उन्होंने वनके भीतर कबन्ध नामक राक्षसका वध किया । फिर सुग्रीवके साथ उनकी मित्रता हुई । तत्पश्चात् श्रीरामके लिये वानरोंकी सेना एकत्रित हुई । हनुमान्‌जीने लङ्काके उद्यानमें जाकर सीताजीका दर्शन किया और उन्हें श्रीरामकी चिह्नस्वरूप मुद्रिका प्रदान की । यह उन्होंने महान् पुरुषार्थका काम किया था । वहाँसे लौटकर वे श्रीरामचन्द्रजीसे मिले और लङ्काका सारा समाचार उनसे निवेदन किया । हनुमान्‌जीकी बात सुनकर श्रीरामने सुग्रीवकी अनुमति ले लङ्काको प्रस्थान करनेका विचार किया और समुद्रके किनारे पहुँचकर उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन ! किस पुण्यसे इस समुद्रको पार किया जा सकता है ? यह अत्यन्त अगाध और भयङ्कर जलजन्तुओंसे भरा हुआ है । मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं दिखायी देता, जिससे इसको सुगमतासे पार किया जा सके ।'

लक्ष्मण बोले—महाराज ! आप ही आदि देव और पुराणपुरुष पुरुषोत्तम हैं । आपसे क्या छिपा है ? यहाँ द्वीपके भीतर वकदाल्भ्य नामक मुनि रहते हैं । यहाँसे

आधे योजनकी दूरीपर उनका आश्रम है । रघुनन्दन ! उन प्राचीन मुनीश्वरके पास जाकर उन्हींसे इसका उपाय पूछिये ।

लक्ष्मणकी यह अत्यन्त सुन्दर बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी महामुनि वकदाल्भ्यसे मिलनेके लिये गये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने मस्तक झुकाकर मुनिको प्रणाम किया । मुनि उनको देखते ही पहचान गये कि ये पुराणपुरुषोत्तम श्रीराम हैं, जो किसी कारणवश मानव-शरीरमें अवतीर्ण हुए हैं । उनके आनेसे महर्षिको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने पूछा—'श्रीराम ! आपका कैसे यहाँ आगमन हुआ ?'

श्रीराम बोले—ब्रह्मन् ! आपकी कृपासे राक्षसोंसहित लङ्काको जीतनेके लिये सेनाके साथ समुद्रके किनारे आया हूँ । मुने ! अब जिस प्रकार समुद्र पार किया जा सके, वह उपाय बताइये । मुझपर कृपा कीजिये ।

वकदाल्भ्यने कहा—श्रीराम ! फाल्गुनके कृष्णपक्षमें जो 'विजया' नामकी एकादशी होती है, उसका व्रत करनेसे आपकी विजय होगी । निश्चय ही आप अपनी वानरसेनाके

साथ समुद्रको पार कर लेंगे। राजन्! अब इस व्रतकी फलदायक विधि सुनिये। दशमीका दिन आनेपर एक कलश स्थापित करे। वह सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टीका भी हो सकता है। उस कलशको जलसे भरकर उसमें पल्लव डाल दे। उसके ऊपर भगवान् नारायणके सुवर्णमय विग्रहकी स्थापना करे। फिर एकादशीके दिन प्रातःकाल स्नान करे। कलशको पुनः स्थिरतापूर्वक स्थापित करे। माला, चन्दन, सुपारी तथा नारियल आदिके द्वारा विशेषरूपसे उसका पूजन करे। कलशके ऊपर सप्तधान्य और जौ रखे। गन्ध, धूप, दीप और भाँति-भाँतिके नैवेद्यसे पूजन करे। कलशके सामने बैठकर वह सारा दिन उत्तम कथा-वार्ता आदिके द्वारा व्यतीत करे तथा रातमें भी वहाँ जागरण करे। अखण्ड व्रतकी सिद्धिके लिये घीका दीपक जलाये। फिर द्वादशीके दिन सूर्योदय होनेपर उस कलशको किसी जलाशयके समीप—नदी, झरने या पोखरेके तटपर ले जाकर स्थापित करे और उसकी विधिवत् पूजा करके देव-प्रतिमासहित उस कलशको वेदवेत्ता ब्राह्मणके लिये दान कर दे। महाराज! कलशके साथ ही और भी बड़े-बड़े दान देने चाहिये। श्रीराम! आप अपने यूथपतियोंके साथ इसी विधिसे प्रयत्नपूर्वक 'विजया'का व्रत कीजिये। इससे आपकी विजय होगी।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने मुनिके कथनानुसार उस समय 'विजया' एकादशीका व्रत किया। उस व्रतके करनेसे श्रीरामचन्द्रजी विजयी हुए। उन्होंने संग्राममें रावणको मारा, लङ्कापर विजय पायी और सीताको प्राप्त किया। बेटा! जो मनुष्य इस विधिसे व्रत करते हैं, उन्हें इस लोकमें विजय प्राप्त होती है और उनका परलोक भी अक्षय बना रहता है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर! इस कारण 'विजया'का व्रत करना चाहिये। इस प्रसङ्गको पढ़ने और सुननेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है।

युधिष्ठिरने कहा—श्रीकृष्ण! मैंने विजया एकादशीका माहात्म्य, जो महान् फल देनेवाला है, सुन लिया। अब फाल्गुन शुक्लपक्षकी एकादशीका नाम और माहात्म्य बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाभाग धर्मनन्दन! सुनो—तुम्हें इस समय वह प्रसङ्ग सुनाता हूँ, जिसे राजा मान्धाताके पूछनेपर महात्मा वसिष्ठने कहा था। फाल्गुन शुक्लपक्षकी एकादशीका नाम 'आमलकी' है। इसका पवित्र व्रत विष्णुलोककी प्राप्ति करानेवाला है।

मान्धाताने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! यह 'आमलकी' कब उत्पन्न हुई, मुझे बताइये।

वसिष्ठजीने कहा—महाभाग! सुनो—पृथ्वीपर 'आमलकी'की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, यह बताता हूँ। आमलकी महान् वृक्ष है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। भगवान् विष्णुके थूकनेपर उनके मुखसे चन्द्रमाके समान कान्तिमान् एक बिन्दु प्रकट हुआ। वह बिन्दु पृथ्वीपर गिरा। उसीसे आमलकी (आँवले) का महान् वृक्ष उत्पन्न हुआ। यह सभी वृक्षोंका आदिभूत कहलाता है। इसी समय समस्त प्रजाकी सृष्टि करनेके लिये भगवान्ने ब्रह्माजीको उत्पन्न किया। उन्हींसे इन प्रजाओंकी सृष्टि हुई। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग तथा निर्मल अन्तःकरणवाले महर्षियोंको ब्रह्माजीने जन्म दिया। उनमेंसे देवता और ऋषि उस स्थानपर आये, जहाँ विष्णुप्रिया आमलकीका वृक्ष था। महाभाग! उसे देखकर देवताओंको बड़ा विस्मय हुआ। वे एक दूसरेपर दृष्टिपात करते हुए उत्कण्ठापूर्वक उस वृक्षकी ओर देखने लगे और खड़े-खड़े सोचने लगे कि प्लक्ष (पाकर) आदि वृक्ष तो पूर्व कल्पकी ही भाँति हैं, जो सब-के-सब हमारे परिचित हैं, किन्तु इस वृक्षको हम नहीं जानते। उन्हें इस प्रकार चिन्ता करते देख आकाशवाणी हुई—'महर्षियो! यह सर्वश्रेष्ठ आमलकीका वृक्ष है, जो विष्णुको प्रिय है। इसके स्मरणमात्रसे गोदानका फल मिलता है। स्पर्श करनेसे इससे दूना और फल भक्षण करनेसे तिगुना पुण्य प्राप्त होता है। इसलिये सदा प्रयत्नपूर्वक आमलकीका सेवन करना चाहिये। यह सब पापोंको हरनेवाला वैष्णव वृक्ष बताया गया है। इसके मूलमें विष्णु, उसके ऊपर ब्रह्मा, स्कन्धमें परमेश्वर भगवान् रुद्र, शाखाओंमें मुनि, टहनियोंमें देवता, पत्तोंमें वसु, फूलोंमें मरुद्गण तथा फलोंमें समस्त प्रजापति वास करते हैं। आमलकी सर्वदेवमयी बतायी गयी है।* अतः विष्णुभक्त पुरुषोंके लिये यह परम पूज्य है।'

---

* तस्या मूले स्थितो विष्णुस्तदूर्ध्वं च पितामहः।
स्कन्धे च भगवान् रुद्रः संस्थितः परमेश्वरः॥
शाखासु मुनयः सर्वे प्रशाखासु च देवताः।
पर्णेषु वसवो देवाः पुष्पेषु मरुतस्तथा॥

ऋषि बोले—[अव्यक्त स्वरूपसे बोलनेवाले महापुरुष!] हमलोग आपको क्या समझें—आप कौन हैं? देवता हैं या कोई और? हमें ठीक-ठीक बताइये।

आकाशवाणी हुई—जो सम्पूर्ण भूतोंके कर्ता और समस्त भुवनोंके स्रष्टा हैं, जिन्हें विद्वान् पुरुष भी कठिनतासे देख पाते हैं, वही सनातन विष्णु मैं हूँ।

देवाधिदेव भगवान् विष्णुका कथन सुनकर उन ब्रह्म-कुमार महर्षियोंके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो उठे। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वे आदि-अन्तरहित भगवान्‌की स्तुति करने लगे।

ऋषि बोले—सम्पूर्ण भूतोंके आत्मभूत, आत्मा एवं परमात्माको नमस्कार है। अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले अच्युतको नित्य प्रणाम है। अन्तरहित परमेश्वरको बारंबार प्रणाम है। दामोदर, कवि (सर्वज्ञ) और यज्ञेश्वर-को नमस्कार है। मायापते! आपको प्रणाम है। आप विश्वके स्वामी हैं; आपको नमस्कार है।

ऋषियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् श्रीहरि संतुष्ट हुए और बोले—'महर्षियो! तुम्हें कौन-सा अभीष्ट वरदान दूँ?'

ऋषि बोले—भगवन्! यदि आप संतुष्ट हैं तो हमलोगोंके हितके लिये कोई ऐसा व्रत बतलाइये, जो स्वर्ग और मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाला हो।

श्रीविष्णु बोले—महर्षियो! फाल्गुन शुक्लपक्षमें यदि पुष्य नक्षत्रसे युक्त द्वादशी हो तो वह महान् पुण्य देनेवाली और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली होती है। द्विजवरो! उसमें जो विशेष कर्तव्य है, उसको सुनो। आमलकी एकादशीमें आँवलेके वृक्षके पास जाकर वहाँ रात्रिमें जागरण करना चाहिये। इससे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता और सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त करता है। विप्रगण! यह व्रतोंमें उत्तम व्रत है, जिसे मैंने तुमलोगोंको बताया है।

ऋषि बोले—भगवन्! इस व्रतकी विधि बतलाइये। यह कैसे पूर्ण होता है? इसके देवता, नमस्कार और मन्त्र कौन-से बताये गये हैं? उस समय स्नान और दान कैसे किया जाता है? पूजनकी कौन-सी विधि है तथा उसके लिये मन्त्र क्या है? इन सब बातोंका यथार्थ रूपसे वर्णन कीजिये।

भगवान् विष्णुने कहा—द्विजवरो! इस व्रतकी जो उत्तम विधि है, उसको श्रवण करो। एकादशीको प्रातःकाल दन्तधावन करके यह सङ्कल्प करे कि 'हे पुण्डरीकाक्ष! हे अच्युत! मैं एकादशीको निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा। आप मुझे शरणमें रखें।' ऐसा नियम लेनेके बाद पतित, चोर, पाखण्डी, दुराचारी, मर्यादा भंग करनेवाले तथा गुरुपत्नीगामी मनुष्योंसे वार्तालाप न करे। अपने मनको वशमें रखते हुए नदीमें, पोखरेमें, कुएँपर अथवा घरमें ही स्नान करे। स्नानके पहले शरीरमें मिट्टी लगाये।

मृत्तिका लगानेका मन्त्र

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं जन्मकोट्यां समर्जितम्॥
(४७।४३)

'वसुन्धरे! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं तथा वामन अवतारके समय भगवान् विष्णुने भी तुम्हें अपने पैरोंसे नापा था। मृत्तिके! मैंने करोड़ों जन्मोंमें जो पाप किये हैं, मेरे उन सब पापोंको हर लो।'

स्नान-मन्त्र

त्वं मातः सर्वभूतानां जीवनं तत्तु रक्षकम्।
स्वेदजोद्भिज्जजातीनां रसानां पतये नमः॥
स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु ह्रदप्रस्रवणेषु च।
नदीषु देवखातेषु इदं स्नानं तु मे भवेत्॥
(४७।४४-४५)

'जलकी अधिष्ठात्री देवी! मातः! तुम सम्पूर्ण भूतोंके लिये जीवन हो। वही जीवन, जो स्वेदज और उद्भिज्ज जातिके जीवोंका भी रक्षक है। तुम रसोंकी स्वामिनी हो। तुम्हें नमस्कार है। आज मैं सम्पूर्ण तीर्थों, कुण्डों, झरनों, नदियों और देवसम्बन्धी सरोवरोंमें स्नान कर चुका। मेरा यह स्नान उक्त सभी स्नानोंका फल देनेवाला हो।'

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह परशुरामजीकी सोनेकी प्रतिमा बनवाये। प्रतिमा अपनी शक्ति और धनके अनुसार एक या आधे माशे सुवर्णकी होनी चाहिये। स्नानके पश्चात्

प्रजानां पतयः सर्वे फलेष्वेव व्यवस्थिताः।
सर्वदेवमयी ह्येषा धात्री च कथिता मया॥
(४७।२०-२३)

घर आकर पूजा और हवन करे । इसके बाद सब प्रकारकी सामग्री लेकर आँवलेके वृक्षके पास जाय । वहाँ वृक्षके चारों ओरकी जमीन झाड़-बुहार, लीप-पोतकर शुद्ध करे । शुद्ध की हुई भूमिमें मन्त्रपाठपूर्वक जलसे भरे हुए नवीन कलशकी स्थापना करे । कलशमें पञ्चरत्न और दिव्य गन्ध आदि छोड़ दे । श्वेतचन्दनसे उसको चर्चित करे । कण्ठमें फूलकी माला पहनाये । सब प्रकारके धूपकी सुगन्ध फैलाये । जलते हुए दीपकोंकी श्रेणी सजाकर रखे । तात्पर्य यह कि सब ओरसे सुन्दर एवं मनोहर दृश्य उपस्थित करे । पूजाके लिये नवीन छाता, जूता और वस्त्र भी मँगाकर रखे । कलशके ऊपर एक पात्र रखकर उसे दिव्य लाजों (खीलों) से भर दे । फिर उसके ऊपर सुवर्णमय परशुरामजीकी स्थापना करे। 'विशोकाय नमः' कहकर उनके चरणोंकी, 'विश्वरूपिणे नमः' से दोनों घुटनोंकी, 'उग्राय नमः' से जाँघोंकी, 'दामोदराय नमः' से कटिभागकी, 'पद्मनाभाय नमः' से उदरकी, 'श्रीवत्सधारिणे नमः' से वक्षःस्थलकी, 'चक्रिणे नमः' से बायीं बाँहकी, 'गदिने नमः' से दाहिनी बाँहकी, 'वैकुण्ठाय नमः' से कण्ठकी, 'यज्ञमुखाय नमः' से मुखकी, 'विशोकनिधये नमः' से नासिकाकी, 'वासुदेवाय नमः' से नेत्रोंकी, 'वामनाय नमः' से ललाटकी, 'सर्वात्मने नमः' से सम्पूर्ण अङ्गों तथा मस्तककी पूजा करे । ये ही पूजाके मन्त्र हैं । तदनन्तर भक्तियुक्त चित्तसे शुद्ध फलके द्वारा देवाधिदेव परशुरामजीको अर्घ्य प्रदान करे । अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

नमस्ते देवदेवेश जामदग्न्य नमोऽस्तु ते ।
गृहाणार्घ्यमिमं दत्तमामलक्या युतं हरे ॥
(४७ । ५७)

'देवदेवेश्वर ! जमदग्निनन्दन ! श्रीविष्णुस्वरूप परशुरामजी ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आँवलेके फलके साथ दिया हुआ मेरा यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये ।'

तदनन्तर भक्तियुक्त चित्तसे जागरण करे । नृत्य, संगीत, वाद्य, धार्मिक उपाख्यान तथा श्रीविष्णुसम्बन्धिनी कथा-वार्ता आदिके द्वारा वह रात्रि व्यतीत करे । उसके बाद भगवान् विष्णुके नाम ले-लेकर आमलकी वृक्षकी परिक्रमा एक सौ आठ या अट्ठाईस बार करे । फिर सवेरा होनेपर श्रीहरिकी आरती करे । ब्राह्मणकी पूजा करके वहाँकी सब सामग्री उसे निवेदन कर दे । परशुरामजीका कलश, दो वस्त्र, जूता आदि सभी वस्तुएँ दान कर दे और यह भावना करे कि 'परशुरामजीके स्वरूपमें भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों ।' तत्पश्चात् आमलकीका स्पर्श करके उसकी प्रदक्षिणा करे और स्नान करनेके बाद विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये । तदनन्तर कुटुम्बियोंके साथ बैठकर स्वयं भी भोजन करे । ऐसा करनेसे जो पुण्य होता है, वह सब बतलाता हूँ; सुनो । सम्पूर्ण तीर्थोंके सेवनसे जो पुण्य प्राप्त होता है तथा सब प्रकारके दान देनेसे जो फल मिलता है, वह सब उपर्युक्त विधिके पालनसे सुलभ होता है । समस्त यज्ञोंकी अपेक्षा भी अधिक फल मिलता है; इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । यह व्रत सब व्रतोंमें उत्तम है, जिसका मैंने तुमसे पूरा-पूरा वर्णन किया है ।

वसिष्ठजी कहते हैं—महाराज ! इतना कहकर देवेश्वर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये । तत्पश्चात् उन समस्त महर्षियोंने उक्त व्रतका पूर्णरूपसे पालन किया । नृपश्रेष्ठ ! इसी प्रकार तुम्हें भी इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये ।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर ! यह दुर्धर्ष व्रत मनुष्यको सब पापोंसे मुक्त करनेवाला है ।

चैत्रमासकी 'पापमोचनी' तथा 'कामदा' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! फाल्गुन शुक्लपक्षकी आमलकी एकादशीका माहात्म्य मैंने सुना । अब चैत्र कृष्णपक्षकी एकादशीका क्या नाम है, यह बतानेकी कृपा कीजिये ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! सुनो—मैं इस विषयमें एक पापनाशक उपाख्यान सुनाऊँगा, जिसे चक्रवर्ती नरेश मान्धाताके पूछनेपर महर्षि लोमशने कहा था ।

मान्धाता बोले—भगवन् ! मैं लोगोंके हितकी इच्छासे यह सुनना चाहता हूँ कि चैत्रमासके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ? उसकी क्या विधि है तथा उससे किस फलकी प्राप्ति होती है ? कृपया ये सब बात बताइये ।

लोमशजीने कहा—नृपश्रेष्ठ ! पूर्वकालकी बात है,

अप्सराओंसे सेवित चैत्ररथ नामक वनमें, जहाँ गन्धर्वोंकी कन्याएँ अपने किङ्करोंके साथ बाजे बजाती हुई विहार करती हैं, मञ्जुघोषा नामक अप्सरा मुनिवर मेधावीको मोहित करनेके लिये गयी । वे महर्षि उसी वनमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करते थे । मञ्जुघोषा मुनिके भयसे आश्रमसे एक कोस दूर ही ठहर गयी और सुन्दर ढंगसे वीणा बजाती हुई मधुर गीत गाने लगी । मुनिश्रेष्ठ मेधावी घूमते हुए उधर जा निकले और उस सुन्दरी अप्सराको इस प्रकार गान करते देख सेनासहित कामदेवसे परास्त होकर बरबस मोहके वशीभूत हो गये । मुनिकी ऐसी अवस्था देख मञ्जुघोषा उनके समीप आयी और वीणा नीचे रखकर उनका आलिङ्गन करने लगी । मेधावी भी उसके साथ रमण करने लगे । कामवश रमण करते हुए उन्हें रात और दिनका भी भान न रहा । इस प्रकार मुनिजनोचित सदाचारका लोप करके अप्सराके साथ रमण करते उन्हें बहुत दिन व्यतीत हो गये । मञ्जुघोषा देवलोकमें जानेको तैयार हुई । जाते समय उसने मुनिश्रेष्ठ मेधावीसे कहा—'ब्रह्मन् ! अब मुझे अपने देश जानेकी आज्ञा दीजिये ।'

मेधावी बोले—देवी ! जबतक सबेरेकी सन्ध्या न हो जाय तबतक मेरे ही पास ठहरो ।

अप्सराने कहा—विप्रवर ! अबतक न जाने कितनी सन्ध्या चली गयी ! मुझपर कृपा करके बीते हुए समयका विचार तो कीजिये ।

लोमशजी कहते हैं—राजन् ! अप्सराकी बात सुनकर मेधावीके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो उठे । उस समय उन्होंने बीते हुए समयका हिसाब लगाया तो मालूम हुआ कि उसके साथ रहते सत्तावन वर्ष हो गये । उसे अपनी तपस्याका विनाश करनेवाली जानकर मुनिको उसपर बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने शाप देते हुए कहा—'पापिनी ! तू पिशाची हो जा ।' मुनिके शापसे दग्ध होकर वह विनयसे नतमस्तक हो बोली—'विप्रवर ! मेरे शापका उद्धार कीजिये । सात वाक्य बोलने या सात पद साथ-साथ चलने मात्रसे ही सत्पुरुषोंके साथ मैत्री हो जाती है । ब्रह्मन् ! मैंने तो आपके साथ अनेक वर्ष व्यतीत किये हैं; अतः स्वामिन् ! मुझपर कृपा कीजिये ।'

मुनि बोले—भद्रे ! मेरी बात सुनो—यह शापसे उद्धार करनेवाली है । क्या करूँ ? तुमने मेरी बहुत बड़ी तपस्या नष्ट कर डाली है । चैत्र कृष्णपक्षमें जो शुभ एकादशी आती है उसका नाम है 'पापमोचनी' । वह सब पापोंका क्षय करनेवाली है । सुन्दरी ! उसीका व्रत करनेपर तुम्हारी पिशाचता दूर होगी ।

ऐसा कहकर मेधावी अपने पिता मुनिवर च्यवनके आश्रमपर गये । उन्हें आया देख च्यवनने पूछा—'बेटा ! यह क्या किया ? तुमने तो अपने पुण्यका नाश कर डाला !'

मेधावी बोले—पिताजी ! मैंने अप्सराके साथ रमण करनेका पातक किया है । कोई ऐसा प्रायश्चित्त बताइये, जिससे पापका नाश हो जाय ।

च्यवनने कहा—बेटा ! चैत्र कृष्णपक्षमें जो पापमोचनी एकादशी होती है, उसका व्रत करनेपर पापराशिका विनाश हो जायगा ।

पिताका यह कथन सुनकर मेधावीने उस व्रतका अनुष्ठान किया । इससे उनका पाप नष्ट हो गया और वे पुनः तपस्यासे परिपूर्ण हो गये । इसी प्रकार मञ्जुघोषाने भी इस उत्तम व्रतका पालन किया । 'पापमोचनी'का व्रत करनेके कारण वह पिशाच-योनिसे मुक्त हुई और दिव्य रूपधारिणी श्रेष्ठ अप्सरा होकर स्वर्गलोकमें चली गयी । राजन् ! जो श्रेष्ठ मनुष्य पापमोचनी एकादशीका व्रत करते हैं, उनका सारा पाप नष्ट हो जाता है । इसको पढ़ने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है । ब्रह्महत्या, सुवर्णकी चोरी, सुरापान और गुरुपत्नीगमन करनेवाले महापातकी भी इस व्रतके करनेसे पापमुक्त हो जाते हैं । यह व्रत बहुत पुण्यमय है ।

युधिष्ठिरने पूछा—वासुदेव ! आपको नमस्कार है । अब मेरे सामने यह बताइये कि चैत्र शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! एकाग्रचित्त होकर यह पुरातन कथा सुनो, जिसे वसिष्ठजीने दिलीपके पूछनेपर कहा था ।

दिलीपने पूछा—भगवन् ! मैं एक बात सुनना चाहता हूँ । चैत्रमासके शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ?

वसिष्ठजी बोले—राजन् ! चैत्र शुक्लपक्षमें 'कामदा' नामकी एकादशी होती है । वह परम पुण्यमयी है । पापरूपी ईंधनके लिये तो वह दावानल ही है । प्राचीन कालकी बात

है, नागपुर नामका एक सुन्दर नगर था, जहाँ सोनेके महल बने हुए थे। उस नगरमें पुण्डरीक आदि महा भयङ्कर नाग निवास करते थे। पुण्डरीक नामका नाग उन दिनों वहाँ राज्य करता था। गन्धर्व, किन्नर और अप्सराएँ भी उस नगरीका सेवन करती थीं। वहाँ एक श्रेष्ठ अप्सरा थी, जिसका नाम ललिता था। उसके साथ ललित नामवाला गन्धर्व भी था। वे दोनों पति-पत्नीके रूपमें रहते थे। दोनों ही परस्पर कामसे पीड़ित रहा करते थे। ललिताके हृदयमें सदा पतिकी ही मूर्ति बसी रहती थी और ललितके हृदयमें सुन्दरी ललिताका नित्य निवास था। एक दिनकी बात है, नागराज पुण्डरीक राजसभामें बैठकर मनोरञ्जन कर रहा था। उस समय ललितका गान हो रहा था। किन्तु उसके साथ उसकी प्यारी ललिता नहीं थी। गाते-गाते उसे ललिताका स्मरण हो आया। अतः उसके पैरोंकी गति रुक गयी और जीभ लड़खड़ाने लगी। नागोंमें श्रेष्ठ कर्कोटकको ललितके मनका सन्ताप ज्ञात हो गया; अतः उसने राजा पुण्डरीकको उसके पैरोंकी गति रुकने एवं गानमें त्रुटि होनेकी बात बता दी। कर्कोटककी बात सुनकर नागराज पुण्डरीककी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उसने गाते हुए कामातुर ललितको शाप दिया—'दुर्बुद्धे! तू मेरे सामने गान करते समय भी पत्नीके वशीभूत हो गया, इसलिये राक्षस हो जा।'

महाराज पुण्डरीकके इतना कहते ही वह गन्धर्व राक्षस हो गया। भयङ्कर मुख, विकराल आँखें और देखनेमात्रसे भय उपजानेवाला रूप। ऐसा राक्षस होकर वह कर्मका फल भोगने लगा। ललिता अपने पतिकी विकराल आकृति देख मन-ही-मन बहुत चिन्तित हुई। भारी दुःखसे कष्ट पाने लगी। सोचने लगी, 'क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मेरे पति पापसे कष्ट पा रहे हैं।' वह रोती हुई घने जंगलोंमें पतिके पीछे-पीछे घूमने लगी। वनमें उसे एक सुन्दर आश्रम दिखायी दिया, जहाँ एक शान्त मुनि बैठे हुए थे। उनका किसी भी प्राणीके साथ वैर-विरोध नहीं था। ललिता शीघ्रताके साथ वहाँ गयी और मुनिको प्रणाम करके उनके सामने खड़ी हुई। मुनि बड़े दयालु थे। उस दुःखिनीको

देखकर वे इस प्रकार बोले—'शुभे! तुम कौन हो? कहाँसे यहाँ आयी हो? मेरे सामने सच-सच बताओ।'

ललिताने कहा—महामुने! वीरधन्वा नामवाले एक गन्धर्व हैं। मैं उन्हीं महात्माकी पुत्री हूँ। मेरा नाम ललिता है। मेरे स्वामी अपने पाप-दोषके कारण राक्षस हो गये हैं। उनकी यह अवस्था देखकर मुझे चैन नहीं है। ब्रह्मन्! इस समय मेरा जो कर्तव्य हो, वह बताइये। विप्रवर! जिस पुण्यके द्वारा मेरे पति राक्षसभावसे छुटकारा पा जायँ, उसका उपदेश कीजिये।'

ऋषि बोले—भद्रे! इस समय चैत्र मासके शुक्लपक्षकी 'कामदा' नामक एकादशी तिथि है, जो सब पापोंको हरनेवाली और उत्तम है। तुम उसीका विधिपूर्वक व्रत करो और इस व्रतका जो पुण्य हो, उसे अपने स्वामीको दे डालो। पुण्य देनेपर क्षणभरमें ही उसके शापका दोष दूर हो जायगा।

राजन्! मुनिका यह वचन सुनकर ललिताको बड़ा हर्ष हुआ। उसने एकादशीको उपवास करके द्वादशीके दिन उन ब्रह्मर्षिके समीप ही भगवान् वासुदेवके [श्रीविग्रहके] समक्ष अपने पतिके उद्धारके लिये यह वचन कहा—'मैंने जो यह कामदा एकादशीका उपवास-व्रत किया है, उसके पुण्यके प्रभावसे मेरे पतिका राक्षस-भाव दूर हो जाय।'

वसिष्ठजी कहते हैं—ललिताके इतना कहते ही उसी क्षण ललितका पाप दूर हो गया। उसने दिव्य देह धारण कर लिया। राक्षस भाव चला गया और पुनः गन्धर्वत्वकी प्राप्ति हुई। नृपश्रेष्ठ! वे दोनों पति-पत्नी 'कामदा'के प्रभावसे पहलेकी अपेक्षा भी अधिक सुन्दर रूप धारण करके विमानपर आरूढ़ हो अत्यन्त शोभा पाने लगे। यह जानकर इस एकादशीके व्रतका यत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। मैंने लोगोंके हितके लिये तुम्हारे सामने इस व्रतका वर्णन किया है। कामदा एकादशी ब्रह्महत्या आदि पापों तथा पिशाचत्व आदि दोषोंका भी नाश करनेवाली है। राजन्! इसके पढ़ने और सुननेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है।

वैशाख मासकी 'वरूथिनी' और 'मोहिनी' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—वासुदेव! आपको नमस्कार है। वैशाख मासके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है? उसकी महिमा बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! वैशाख कृष्ण पक्षकी एकादशी 'वरूथिनी'के नामसे प्रसिद्ध है। यह इस लोक और परलोकमें भी सौभाग्य प्रदान करनेवाली है। 'वरूथिनी'के व्रतसे ही सदा सौख्यका लाभ और पापकी हानि होती है। यह समस्त लोकोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। 'वरूथिनी'के ही व्रतसे मान्धाता तथा धुन्धुमार आदि अन्य अनेक राजा स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। जो दस हजार वर्षोंतक तपस्या करता है, उसके समान ही फल 'वरूथिनी'के व्रतसे भी मनुष्य प्राप्त कर लेता है। नृपश्रेष्ठ! घोड़ेके दानसे हाथीका दान श्रेष्ठ है। भूमिदान उससे भी बड़ा है। भूमिदानसे भी अधिक महत्त्व तिलदानका है। तिलदानसे बढ़कर स्वर्णदान और स्वर्णदानसे बढ़कर अन्नदान है, क्योंकि देवता, पितर तथा मनुष्योंको अन्नसे ही तृप्ति होती है। विद्वान् पुरुषोंने कन्यादानको भी अन्नदानके ही समान बताया है। कन्यादानके तुल्य ही धेनुका दान है—यह साक्षात् भगवान्‌का कथन है। ऊपर बताये हुए सब दानोंसे बड़ा विद्यादान है। मनुष्य वरूथिनी एकादशीका व्रत करके विद्यादानका भी फल प्राप्त कर लेता है। जो लोग पापसे मोहित होकर कन्याके धनसे जीविका चलाते हैं, वे पुण्यका क्षय होनेपर यातनामय नरकमें जाते हैं। अतः सर्वथा प्रयत्न करके कन्याके धनसे बचना चाहिये—उसे अपने काममें नहीं लाना चाहिये।* जो अपनी शक्तिके अनुसार आभूषणोंसे विभूषित करके पवित्र भावसे कन्याका दान करता है, उसके पुण्यकी संख्या बतानेमें चित्रगुप्त भी असमर्थ हैं। वरूथिनी एकादशी करके भी मनुष्य उसीके समान फल प्राप्त करता है। व्रत करनेवाला वैष्णव पुरुष दशमी तिथिको काँस, उड़द, मसूर, चना, कोदो, शाक, मधु, दूसरेका अन्न, दो बार भोजन तथा मैथुन—इन दस वस्तुओंका परित्याग कर दे।* एकादशीको जुआ खेलना, नींद लेना, पान खाना, दाँतन करना, दूसरेकी निन्दा करना, चुगली खाना, चोरी, हिंसा, मैथुन, क्रोध तथा असत्य-भाषण—इन ग्यारह बातोंको त्याग दे।† द्वादशीको काँस, उड़द, शराब, मधु, तेल, पतितोंसे वार्तालाप, व्यायाम, परदेशगमन, दो बार भोजन, मैथुन, बैलकी पीठपर सवारी और मसूर—इन बारह वस्तुओंका त्याग करे।‡ राजन्! इस विधिसे वरूथिनी एकादशी की जाती है। रातको जागरण करके जो भगवान् मधुसूदनका पूजन करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो परमगतिको प्राप्त होते हैं। अतः पापभीरु मनुष्योंको पूर्ण प्रयत्न करके इस एकादशीका व्रत करना चाहिये। यमराजसे डरनेवाला मनुष्य अवश्य

---

* कन्यावित्तेन जीवन्ति ये नराः पापमोहिताः ॥
पुण्यक्षयात्ते गच्छन्ति निरयं यातनामयम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन न ग्राह्यं कन्यकाधनम् ॥
(५० । १४-१५)

* कांस्यं माषं मसूरांश्च चणकान् कोद्रवांस्तथा ।
शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ॥
वैष्णवो व्रतकर्ता च दशम्यां दश वर्जयेत् ॥
(५० । १७-१८)

† द्यूतक्रीडां च निद्रां च ताम्बूलं दन्तधावनम् ।
परापवादपैशुन्ये स्तेयं हिंसां तथा रतिम् ॥
क्रोधं चानृतवाक्यानि ह्येकादश्यां विवर्जयेत् ॥
(५० । १९-२०)

‡ कांस्यं माषं सुरां क्षौद्रं तैलं पतितभाषणम् ॥
व्यायामं च प्रवासं च पुनर्भोजनमैथुने ।
वृषपृष्ठं मसूरान्नं द्वादश्यां परिवर्जयेत् ॥
(५० । २०-२१)

'वरूथिनी'का व्रत करे। राजन्! इसके पढ़ने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है और मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन! वैशाख मासके शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है? उसका क्या फल होता है? तथा उसके लिये कौन-सी विधि है?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! पूर्वकालमें परम बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि वसिष्ठसे यही बात पूछी थी, जिसे आज तुम मुझसे पूछ रहे हो।

श्रीरामने कहा—भगवन्! जो समस्त पापोंका क्षय तथा सब प्रकारके दुःखोंका निवारण करनेवाला व्रतोंमें उत्तम व्रत हो, उसे मैं सुनना चाहता हूँ।

वसिष्ठजी बोले—श्रीराम! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है। मनुष्य तुम्हारा नाम लेनेसे ही सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है। तथापि लोगोंके हितकी इच्छासे मैं पवित्रोंमें पवित्र उत्तम व्रतका वर्णन करूँगा। वैशाख मासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका नाम मोहिनी है। वह सब पापोंको हरनेवाली और उत्तम है। उसके व्रतके प्रभावसे मनुष्य मोहजाल तथा पातकसमूहसे छुटकारा पा जाते हैं।

सरस्वती नदीके रमणीय तटपर भद्रावती नामकी सुन्दर नगरी है। वहाँ धृतिमान् नामक राजा, जो चन्द्रवंशमें उत्पन्न और सत्यप्रतिज्ञ थे, राज्य करते थे। उसी नगरमें एक वैश्य रहता था, जो धन-धान्यसे परिपूर्ण और समृद्धिशाली था। उसका नाम था धनपाल। वह सदा पुण्यकर्ममें ही लगा रहता था। दूसरोंके लिये पौसला, कुआँ, मठ, बगीचा, पोखरा और घर बनवाया करता था। भगवान् श्रीविष्णुकी भक्तिमें उसका हार्दिक अनुराग था। वह सदा शान्त रहता था। उसके पाँच पुत्र थे—सुमना, द्युतिमान्, मेधावी, सुकृत तथा धृष्टबुद्धि। धृष्टबुद्धि पाँचवाँ था। वह सदा बड़े-बड़े पापोंमें ही संलग्न रहता था। जुए आदि दुर्व्यसनोंमें उसकी बड़ी आसक्ति थी। वह वेश्याओंसे मिलनेके लिये लालायित रहता था। उसकी बुद्धि न तो देवताओंके पूजनमें लगती थी और न पितरों तथा ब्राह्मणोंके सत्कारमें। वह दुष्टात्मा अन्यायके मार्गपर चलकर पिताका धन बरबाद किया करता था। एक दिन वह वेश्याके गलेमें बाँह डाले चौराहेपर घूमता देखा गया। तब पिताने उसे घरसे निकाल दिया तथा बन्धु-बान्धवोंने भी उसका परित्याग कर दिया। अब वह दिन-रात दुःख और शोकमें डूबा तथा कष्ट-पर-कष्ट उठाता हुआ इधर-उधर भटकने लगा। एक दिन किसी पुण्यके उदय होनेसे वह महर्षि कौण्डिन्यके आश्रमपर जा पहुँचा। वैशाखका महीना था। तपोधन कौण्डिन्य गङ्गाजीमें स्नान करके आये थे। धृष्टबुद्धि शोकके भारसे पीड़ित हो मुनिवर कौण्डिन्यके पास गया और हाथ जोड़ सामने खड़ा होकर बोला—'ब्रह्मन्! द्विजश्रेष्ठ! मुझपर दया करके कोई ऐसा व्रत बताइये, जिसके पुण्यके प्रभावसे मेरी मुक्ति हो।'

कौण्डिन्य बोले—वैशाखके शुक्लपक्षमें मोहिनी नामसे प्रसिद्ध एकादशीका व्रत करो। मोहिनीको उपवास करनेपर प्राणियोंके अनेक जन्मोंके किये हुए मेरुपर्वत-जैसे महापाप भी नष्ट हो जाते हैं।

वसिष्ठजी कहते हैं—श्रीरामचन्द्र! मुनिका यह वचन सुनकर धृष्टबुद्धिका चित्त प्रसन्न हो गया। उसने कौण्डिन्यके उपदेशसे विधिपूर्वक मोहिनी एकादशीका व्रत किया। नृपश्रेष्ठ! इस व्रतके करनेसे वह निष्पाप हो गया और दिव्य देह धारणकर गरुड़पर आरूढ़ हो सब प्रकारके उपद्रवोंसे रहित श्रीविष्णुधामको चला गया। इस प्रकार यह मोहिनीका व्रत बहुत उत्तम है। इसके पढ़ने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है।

ज्येष्ठ मासकी 'अपरा' तथा 'निर्जला' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन! ज्येष्ठके कृष्णपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है? मैं उसका माहात्म्य सुनना चाहता हूँ। उसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! तुमने सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये बहुत उत्तम बात पूछी है। राजेन्द्र! इस एकादशीका नाम 'अपरा' है। यह बहुत पुण्य प्रदान करने-

वाली और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली है। ब्रह्महत्यासे दबा हुआ, गोत्रकी हत्या करनेवाला, गर्भस्थ बालकको मारनेवाला, परनिन्दक तथा परस्त्रीलम्पट पुरुष भी अपरा एकादशीके सेवनसे निश्चय ही पापरहित हो जाता है। जो झूठी गवाही देता, माप-तोलमें धोखा देता, बिना जाने ही नक्षत्रोंकी गणना करता और कूटनीतिसे आयुर्वेदका ज्ञाता बनकर वैद्यका काम करता है—ये सब नरकमें निवास करनेवाले प्राणी हैं। परन्तु अपरा एकादशीके सेवनसे ये भी पापरहित हो जाते हैं। यदि क्षत्रिय क्षात्रधर्मका परित्याग करके युद्धसे भागता है, तो वह क्षत्रियोचित धर्मसे भ्रष्ट होनेके कारण घोर नरकमें पड़ता है। जो शिष्य विद्या प्राप्त करके स्वयं ही गुरुकी निन्दा करता है, वह भी महापातकोंसे युक्त होकर भयङ्कर नरकमें गिरता है। किन्तु अपरा एकादशीके सेवनसे ऐसे मनुष्य भी सद्गतिको प्राप्त होते हैं।

माघमें जब सूर्य मकर राशिपर स्थित हों, उस समय प्रयागमें स्नान करनेवाले मनुष्योंको जो पुण्य होता है, काशीमें शिवरात्रिका व्रत करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, गयामें पिण्डदान करके पितरोंको तृप्ति प्रदान करनेवाला पुरुष जिस पुण्यका भागी होता है, बृहस्पतिके सिंहराशिपर स्थित होनेपर गोदावरीमें स्नान करनेवाला मानव जिस फलको प्राप्त करता है, बदरिकाश्रमकी यात्राके समय भगवान् केदारके दर्शनसे तथा बदरीतीर्थके सेवनसे जो पुण्य-फल उपलब्ध होता है तथा सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें दक्षिणासहित यज्ञ करके हाथी, घोड़ा और सुवर्ण-दान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है; अपरा एकादशीके सेवनसे भी मनुष्य वैसे ही फल प्राप्त करता है। 'अपरा' को उपवास करके भगवान् वामनकी पूजा करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसको पढ़ने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है।

युधिष्ठिरने कहा—जनार्दन! 'अपरा'का सारा माहात्म्य मैंने सुन लिया, अब ज्येष्ठके शुक्लपक्षमें जो एकादशी हो उसका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! इसका वर्णन परम धर्मात्मा सत्यवतीनन्दन व्यासजी करेंगे; क्योंकि ये सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ और वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् हैं।

तब वेदव्यासजी कहने लगे—दोनों ही पक्षोंकी एकादशियोंको भोजन न करे। द्वादशीको स्नान आदिसे पवित्र हो फूलोंसे भगवान् केशवकी पूजा करके नित्यकर्म समाप्त होनेके पश्चात् पहले ब्राह्मणोंको भोजन देकर अन्तमें स्वयं भोजन करे। राजन्! जननाशौच और मरणाशौचमें भी एकादशीको भोजन नहीं करना चाहिये।

यह सुनकर भीमसेन बोले—परम बुद्धिमान् पितामह! मेरी उत्तम बात सुनिये। राजा युधिष्ठिर, माता कुन्ती, द्रौपदी, अर्जुन, नकुल और सहदेव—ये एकादशीको कभी भोजन नहीं करते तथा मुझसे भी हमेशा यही कहते हैं कि 'भीमसेन! तुम भी एकादशीको न खाया करो।' किन्तु मैं इन लोगोंसे यही कह दिया करता हूँ कि 'मुझसे भूख नहीं सही जायगी।'

भीमसेनकी बात सुनकर व्यासजीने कहा—यदि तुम्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति अभीष्ट है और नरकको दूषित समझते हो तो दोनों पक्षोंकी एकादशीको भोजन न करना।

भीमसेन बोले—महाबुद्धिमान् पितामह! मैं आपके सामने सच्ची बात कहता हूँ एक बार भोजन करके भी मुझसे व्रत नहीं किया जा सकता। फिर उपवास करके तो मैं रह ही कैसे सकता हूँ। मेरे उदरमें वृक नामक अग्नि सदा प्रज्वलित रहती है; अतः जब मैं बहुत अधिक खाता हूँ, तभी यह शान्त होती है। इसलिये महामुने! मैं वर्षभरमें

केवल एक ही उपवास कर सकता हूँ; जिससे स्वर्गकी प्राप्ति सुलभ हो तथा जिसके करनेसे मैं कल्याणका भागी हो सकूँ, ऐसा कोई एक व्रत निश्चय करके बताइये। मैं उसका यथोचितरूपसे पालन करूँगा।

व्यासजीने कहा—भीम! ज्येष्ठ मासमें सूर्य वृष राशिपर हों या मिथुन राशिपर; शुक्लपक्षमें जो एकादशी हो, उसका यत्नपूर्वक निर्जल व्रत करो। केवल कुल्ला या आचमन करनेके लिये मुखमें जल डाल सकते हो, उसको छोड़कर और किसी प्रकारका जल विद्वान् पुरुष मुखमें न डाले, अन्यथा व्रत भंग हो जाता है। एकादशीको सूर्योदयसे लेकर दूसरे दिनके सूर्योदयतक मनुष्य जलका त्याग करे तो यह व्रत पूर्ण होता है। तदनन्तर द्वादशीको निर्मल प्रभातकालमें स्नान करके ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक जल और सुवर्णका दान करे। इस प्रकार सब कार्य पूरा करके जितेन्द्रिय पुरुष ब्राह्मणोंके साथ भोजन करे। वर्षभरमें जितनी एकादशियाँ होती हैं, उन सबका फल निर्जला एकादशीके सेवनसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् केशवने मुझसे कहा था कि 'यदि मानव सबको छोड़कर एकमात्र मेरी शरणमें आ जाय और एकादशीको निराहार रहे तो वह सब पापोंसे छूट जाता है।'

एकादशीव्रत करनेवाले पुरुषके पास विशालकाय, विकराल आकृति और काले रंगवाले दण्ड-पाशधारी भयङ्कर यमदूत नहीं जाते। अन्तकालमें पीताम्बरधारी, सौम्य स्वभाववाले, हाथमें सुदर्शन धारण करनेवाले और मनके समान वेगशाली विष्णुदूत आकर इस वैष्णव पुरुषको भगवान् विष्णुके धाममें ले जाते हैं। अतः निर्जला एकादशीको पूर्ण यत्न करके उपवास करना चाहिये। तुम भी सब पापोंकी शान्तिके लिये यत्नके साथ उपवास और श्रीहरिका पूजन करो। स्त्री हो या पुरुष, यदि उसने मेरु पर्वतके बराबर भी महान् पाप किया हो तो वह सब एकादशीके प्रभावसे भस्म हो जाता है। जो मनुष्य उस दिन जलके नियमका पालन करता है, वह पुण्यका भागी होता है, उसे एक-एक पहरमें कोटि-कोटि स्वर्णमुद्रा दान करनेका फल प्राप्त होता सुना गया है। मनुष्य निर्जला एकादशीके दिन स्नान, दान, जप, होम आदि जो कुछ भी करता है, वह सब अक्षय होता है, यह भगवान् श्रीकृष्णका कथन है। निर्जला एकादशीको विधिपूर्वक उत्तम रीतिसे उपवास करके मानव वैष्णवपदको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य एकादशीके दिन अन्न खाता है, वह पाप भोजन करता है। इस लोकमें वह चाण्डालके समान है और मरनेपर दुर्गतिको प्राप्त होता है।*

जो ज्येष्ठके शुक्लपक्षमें एकादशीको उपवास करके दान देंगे, वे परमपदको प्राप्त होंगे। जिन्होंने एकादशीको उपवास किया है, वे ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर तथा गुरुद्रोही होनेपर भी सब पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। कुन्तीनन्दन! निर्जला एकादशीके दिन श्रद्धालु स्त्री-पुरुषोंके लिये जो विशेष दान और कर्तव्य विहित है, उसे सुनो—उस दिन जलमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुका पूजन और जलमयी धेनुका दान करना चाहिये। अथवा प्रत्यक्ष धेनु या घृतमयी धेनुका दान उचित है। पर्याप्त दक्षिणा और भाँति-भाँतिके मिष्टान्नोंद्वारा यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंको संतुष्ट करना चाहिये। ऐसा करनेसे ब्राह्मण अवश्य संतुष्ट होते हैं और उनके संतुष्ट होनेपर श्रीहरि मोक्ष प्रदान करते हैं। जिन्होंने शम, दम और दानमें प्रवृत्त हो श्रीहरिकी पूजा और रात्रिमें जागरण करते हुए इस निर्जला एकादशीका व्रत किया है, उन्होंने अपने साथ ही बीती हुई सौ पीढ़ियोंको और आनेवाली सौ पीढ़ियोंको भगवान् वासुदेवके परम धाममें पहुँचा दिया है। निर्जला एकादशीके दिन अन्न, वस्त्र, गौ, जल, शय्या, सुन्दर आसन, कमण्डलु तथा छाता दान करने चाहिये।† जो श्रेष्ठ एवं सुपात्र ब्राह्मणको जूता दान करता है, वह सोनेके विमानपर बैठकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो इस एकादशीकी महिमाको भक्तिपूर्वक सुनता तथा जो भक्तिपूर्वक उसका वर्णन करता है, वे दोनों स्वर्गलोकमें जाते हैं। चतुर्दशीयुक्त अमावास्याको सूर्यग्रहणके समय श्राद्ध करके मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वही इसके श्रवणसे भी प्राप्त होता है। पहले दन्तधावन करके यह नियम लेना चाहिये कि 'मैं भगवान् केशवकी प्रसन्नताके लिये एकादशीको निराहार रहकर आचमनके सिवा दूसरे

* एकादश्यां दिने योऽन्नं भुङ्क्ते पापं भुनक्ति सः।
इह लोके च चाण्डालो मृतः प्राप्नोति दुर्गतिम्॥
(५३।४३-४४)

† अन्नं वस्त्रं तथा गावो जलं शय्यासनं शुभम्।
कमण्डलुस्तथा छत्रं दातव्यं निर्जलादिने॥
(५३।५३)

जलका भी त्याग करूँगा।' द्वादशीको देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये। गन्ध, धूप, पुष्प और सुन्दर वस्त्रसे विधिपूर्वक पूजन करके जलका घड़ा सङ्कल्प करते हुए निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

देवदेव हृषीकेश संसारार्णवतारक।
उदकुम्भप्रदानेन नय मां परमां गतिम्॥
(५३। ६०)

'संसारसागरसें तारनेवाले देवदेव हृषीकेश! इस जलके घड़ेका दान करनेसे आप मुझे परम गतिकी प्राप्ति कराइये।'

भीमसेन! ज्येष्ठ मासमें शुक्लपक्षकी जो शुभ एकादशी होती है, उसका निर्जल व्रत करना चाहिये तथा उस दिन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको शक्करके साथ जलके घड़े दान करने चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य भगवान् विष्णुके समीप पहुँचकर आनन्दका अनुभव करता है। तत्पश्चात् द्वादशीको ब्राह्मण भोजन करानेके बाद स्वयं भोजन करे। जो इस प्रकार पूर्णरूपसे पापनाशिनी एकादशीका व्रत करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो अनामय पदको प्राप्त होता है।

यह सुनकर भीमसेनने भी इस शुभ एकादशीका व्रत आरम्भ कर दिया। तबसे यह लोकमें 'पाण्डव-द्वादशी' के नामसे विख्यात हुई।

आषाढ़ मासकी 'योगिनी' और 'शयनी' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—वासुदेव! आषाढ़के कृष्णपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है? कृपया उसका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—नृपश्रेष्ठ! आषाढ़के कृष्णपक्षकी एकादशीका नाम 'योगिनी' है। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली है। संसारसागरमें डूबे हुए प्राणियोंके लिये यह सनातन नौकाके समान है। तीनों लोकोंमें यह सारभूत व्रत है।

अलकापुरीमें राजाधिराज कुबेर रहते हैं। वे सदा भगवान् शिवकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले हैं। उनके हेममाली नामवाला एक यक्ष सेवक था, जो पूजाके लिये फूल लाया करता था। हेममालीकी पत्नी बड़ी सुन्दरी थी। उसका नाम विशालाक्षी था। वह यक्ष कामपाशमें आबद्ध होकर सदा अपनी पत्नीमें आसक्त रहता था। एक दिनकी बात है, हेममाली मानसरोवरसे फूल लाकर अपने घरमें ही ठहर गया और पत्नीके प्रेमका रसास्वादन करने लगा; अतः कुबेरके भवनमें न जा सका। इधर कुबेर मन्दिरमें बैठकर शिवका पूजन कर रहे थे। उन्होंने दोपहरतक फूल आनेकी प्रतीक्षा की। जब पूजाका समय व्यतीत हो गया तो यक्षराजने कुपित होकर सेवकोंसे पूछा—'यक्षो! दुरात्मा हेममाली क्यों नहीं आ रहा है, इस बातका पता तो लगाओ।'

यक्षोंने कहा—राजन्! वह तो पत्नीकी कामनामें आसक्त हो अपनी इच्छाके अनुसार घरमें ही रमण कर रहा है।

उनकी बात सुनकर कुबेर क्रोधमें भर गये और तुरंत ही हेममालीको बुलवाया। देर हुई जानकर हेममालीके नेत्र भयसे व्याकुल हो रहे थे। वह आकर कुबेरके सामने खड़ा हुआ। उसे देखकर कुबेरकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वे बोले—'ओ पापी! ओ दुष्ट! ओ दुराचारी! तूने भगवान्‌की अवहेलना की है, अतः कोढ़से युक्त और अपनी उस प्रियतमासे वियुक्त होकर इस स्थानसे भ्रष्ट होकर अन्यत्र चला जा।' कुबेरके ऐसा कहनेपर वह उस स्थानसे नीचे गिर गया। उस समय उसके हृदयमें महान् दुःख हो रहा था। कोढ़ोंसे सारा शरीर पीड़ित था। परन्तु शिव-पूजाके प्रभावसे उसकी स्मरण-शक्ति लुप्त नहीं होती थी। पातकसे दबा होनेपर भी वह अपने पूर्वकर्मको याद रखता था। तदनन्तर इधर-उधर घूमता हुआ वह पर्वतोंमें श्रेष्ठ मेरु-गिरिके शिखरपर गया। वहाँ उसे तपस्याके पुञ्ज मुनिवर मार्कण्डेयजीका दर्शन हुआ। पापकर्मा यक्षने दूरसे ही मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया। मुनिवर मार्कण्डेयने उसे भयसे काँपते देख परोपकारकी इच्छासे निकट बुलाकर कहा—'तुझे कोढ़के
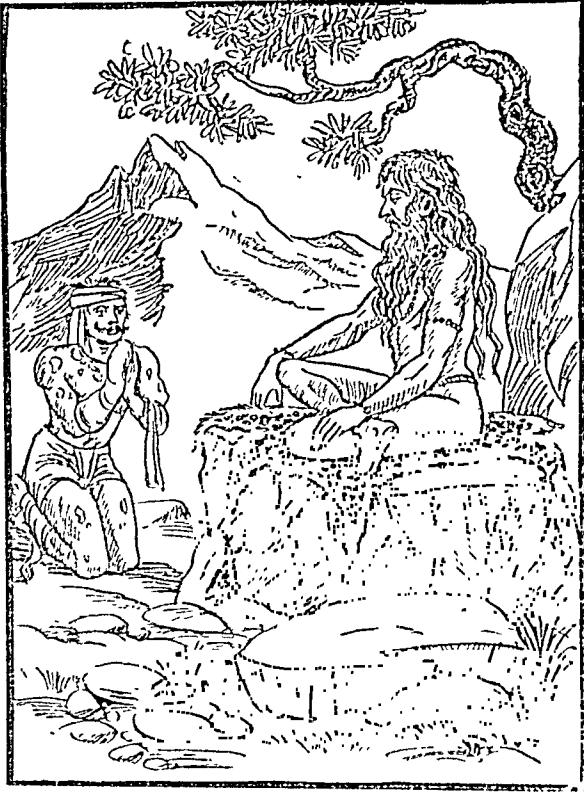
रोगने कैसे दबा लिया ! तू क्यों इतना अधिक निन्दनीय जान पड़ता है ?'

यक्ष बोला—मुने ! मैं कुबेरका अनुचर हूँ । मेरा नाम हेममाली है । मैं प्रतिदिन मानसरोवरसे फूल ले आकर शिव-पूजाके समय कुबेरको दिया करता था । एक दिन पत्नी-सहवासके सुखमें फँस जानेके कारण मुझे समयका ज्ञान ही नहीं रहा; अतः राजाधिराज कुबेरने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया, जिससे मैं कोढ़से आक्रान्त होकर अपनी प्रियतमासे बिछुड़ गया । मुनिश्रेष्ठ ! इस समय किसी शुभ कर्मके प्रभावसे मैं आपके निकट आ पहुँचा हूँ । संतोंका चित्त स्वभावतः परोपकारमें लगा रहता है, यह जानकर मुझ अपराधीको कर्तव्यका उपदेश दीजिये ।

मार्कण्डेयजीने कहा—तुमने यहाँ सच्ची बात कही है, असत्य-भाषण नहीं किया है; इसलिये मैं तुम्हें कल्याणप्रद व्रतका उपदेश करता हूँ । तुम आषाढ़के कृष्णपक्षमें 'योगिनी' एकादशीका व्रत करो । इस व्रतके पुण्यसे तुम्हारी कोढ़ निश्चय ही दूर हो जायगी ।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—ऋषिके ये वचन सुनकर हेममाली दण्डकी भाँति मुनिके चरणोंमें पड़ गया । मुनिने उसे उठाया, इससे उसको बड़ा हर्ष हुआ । मार्कण्डेयजीके उपदेशसे उसने योगिनी एकादशीका व्रत किया, जिससे उसके शरीरकी कोढ़ दूर हो गयी । मुनिके कथनानुसार उस उत्तम व्रतका अनुष्ठान करनेपर वह पूर्ण सुखी हो गया । नृपश्रेष्ठ ! यह योगिनीका व्रत ऐसा ही बताया गया है । जो अठासी हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसके समान ही फल उस मनुष्यको भी मिलता है, जो योगिनी एकादशीका व्रत करता है । 'योगिनी' महान् पापोंको शान्त करनेवाली और महान् पुण्य-फल देनेवाली है । इसके पढ़ने और सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! आषाढ़के शुक्लपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है ? उसका नाम और विधि क्या है ? यह बतलानेकी कृपा करें ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! आषाढ़ शुक्लपक्षकी एकादशीका नाम 'शयनी' है । मैं उसका वर्णन करता हूँ । वह महान् पुण्यमयी, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली, सब पापोंको हरनेवाली तथा उत्तम व्रत है । आषाढ़ शुक्लपक्षमें शयनी एकादशीके दिन जिन्होंने कमल-पुष्पसे कमललोचन भगवान् विष्णुका पूजन तथा एकादशीका उत्तम व्रत किया है, उन्होंने तीनों लोकों और तीनों सनातन देवताओंका पूजन कर लिया । हरिशयनी एकादशीके दिन मेरा एक स्वरूप राजा बलिके यहाँ रहता है और दूसरा क्षीरसागरमें शेषनागकी शय्यापर तबतक शयन करता है, जबतक आगामी कार्तिककी एकादशी नहीं आ जाती; अतः आषाढ़शुक्ला एकादशीसे लेकर कार्तिकशुक्ला एकादशीतक मनुष्यको भली-भाँति धर्मका आचरण करना चाहिये । जो मनुष्य इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है; इस कारण यत्नपूर्वक इस एकादशीका व्रत करना चाहिये । एकादशीकी रातमें जागरण करके शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णुकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये । ऐसा करनेवाले पुरुषके पुण्यकी गणना करनेमें चतुर्मुख ब्रह्माजी भी असमर्थ हैं । राजन् ! जो इस प्रकार भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले सर्वपापहारी एकादशीके उत्तम व्रतका पालन करता है, वह जातिका चाण्डाल होनेपर भी संसारमें सदा मेरा प्रिय करनेवाला है । जो मनुष्य दीपदान, पलाशके पत्तेपर भोजन और व्रत करते हुए चौमासा व्यतीत करते हैं, वे मेरे प्रिय हैं । चौमासेमें भगवान् विष्णु सोये रहते हैं; इसलिये मनुष्यको भूमिपर शयन करना चाहिये । सावनमें साग, भादोंमें दही, क्वारमें दूध और कार्तिकमें दालका

त्याग कर देना चाहिये। * अथवा जो चौमासेमें ब्रह्मचर्यका पालन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। राजन्! एकादशीके व्रतसे ही मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है; अतः सदा इसका व्रत करना चाहिये। कभी भूलना नहीं चाहिये। 'शयनी' और 'बोधिनी'के बीचमें जो कृष्णपक्षकी एकादशियाँ होती हैं, गृहस्थके लिये वे ही व्रत रखने योग्य हैं—अन्य मासोंकी कृष्णपक्षीय एकादशी गृहस्थके रखने योग्य नहीं होती। शुक्लपक्षकी एकादशी सभी करनी चाहिये।

श्रावणमासकी 'कामिका' और 'पुत्रदा' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—गोविन्द! वासुदेव! आपको नमस्कार है! श्रावणके कृष्णपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है? उसका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! सुनो, मैं तुम्हें एक पापनाशक उपाख्यान सुनाता हूँ, जिसे पूर्वकालमें ब्रह्माजीने नारदजीके पूछनेपर कहा था।

नारदजीने प्रश्न किया—भगवन्! कमलासन! मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि श्रावणके कृष्णपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है, उसके कौन-से देवता हैं तथा उससे कौन-सा पुण्य होता है? प्रभो! यह सब बताइये।

ब्रह्माजीने कहा—नारद! सुनो—मैं सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे तुम्हारे प्रश्नका उत्तर दे रहा हूँ। श्रावण मासमें जो कृष्णपक्षकी एकादशी होती है, उसका नाम 'कामिका' है; उसके स्मरणमात्रसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है। उस दिन श्रीधर, हरि, विष्णु, माधव और मधुसूदन आदि नामोंसे भगवान्‌का पूजन करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णके पूजनसे जो फल मिलता है, वह गङ्गा, काशी, नैमिषारण्य तथा पुष्कर क्षेत्रमें भी सुलभ नहीं है। सिंह-राशिके बृहस्पति होनेपर तथा व्यतीपात और दण्डयोगमें गोदावरीस्नानसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल भगवान् श्रीकृष्णके पूजनसे भी मिलता है। जो समुद्र और वनसहित समूची पृथ्वीका दान करता है तथा जो कामिका एकादशीका व्रत करता है, वे दोनों समान फलके भागी माने गये हैं। जो ब्याती हुई गायको अन्यान्य सामग्रियोंसहित दान करता है, उस मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही 'कामिका'का व्रत करनेवालेको मिलता है। जो नरश्रेष्ठ श्रावणमासमें भगवान् श्रीधरका पूजन करता है, उसके द्वारा गन्धर्वों और नागों-सहित सम्पूर्ण देवताओंकी पूजा हो जाती है; अतः पापभीरु मनुष्योंको यथाशक्ति पूरा प्रयत्न करके 'कामिका'के दिन श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। जो पापरूपी पङ्कसे भरे हुए संसारसमुद्रमें डूब रहे हैं, उनका उद्धार करनेके लिये कामिका-का व्रत सबसे उत्तम है। अध्यात्मविद्यापरायण पुरुषोंको जिस फलकी प्राप्ति होती है; उससे बहुत अधिक फल 'कामिका'-व्रतका सेवन करनेवालोंको मिलता है। 'कामिका'का व्रत करने-वाला मनुष्य रात्रिमें जागरण करके न तो कभी भयङ्कर यमराज-का दर्शन करता है और न कभी दुर्गतिमें ही पड़ता है।

लाल मणि, मोती, वैदूर्य और मूँगे आदिसे पूजित होकर भी भगवान् विष्णु वैसे संतुष्ट नहीं होते, जैसे तुलसीदलसे पूजित होनेपर होते हैं। जिसने तुलसीकी मञ्जरियोंसे श्रीकेशवका पूजन कर लिया है; उसके जन्मभरका पाप निश्चय ही नष्ट हो जाता है। जो दर्शन करनेपर सारे पापसमुदायका नाश कर देती है, स्पर्श करनेपर शरीरको पवित्र बनाती है, प्रणाम करनेपर रोगोंका निवारण करती है, जलसे सींचनेपर यमराजको भी भय पहुँचाती है, आरोपित करनेपर भगवान् श्रीकृष्णके समीप ले जाती है और भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ानेपर मोक्ष-रूपी फल प्रदान करती है, उस तुलसी देवीको नमस्कार है। † जो मनुष्य एकादशीको दिन-रात दीपदान करता है, उसके पुण्यकी संख्या चित्रगुप्त भी नहीं जानते। एकादशीके दिन भगवान् श्रीकृष्णके सम्मुख जिसका दीपक जलता है, उसके पितर स्वर्गलोकमें स्थित होकर अमृतपानसे तृप्त होते हैं। घी अथवा तिलके तेलसे भगवान्‌के सामने दीपक जला-कर मनुष्य देह-त्यागके पश्चात् करोड़ों दीपकोंसे पूजित हो स्वर्गलोकमें जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर! यह तुम्हारे

* श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा॥ दुग्धमाश्वयुजि त्याज्यं कार्तिके द्विदलं त्यजेत्। (५५। ३३-३४)

† या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुष्पावनी रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः॥ (५६। २२)

सामने मैंने कामिका एकादशीकी महिमाका वर्णन किया है। 'कामिका' सब पातकोंको हरनेवाली है; अतः मानवोंको इसका व्रत अवश्य करना चाहिये। यह स्वर्गलोक तथा महान् पुण्य-फल प्रदान करनेवाली है। जो मनुष्य श्रद्धाके साथ इसका माहात्म्य श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णु-लोकमें जाता है।

युधिष्ठिरने पूछा—मधुसूदन! श्रावणके शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है? कृपया मेरे सामने उसका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! प्राचीन कालकी बात है, द्वापर युगके प्रारम्भका समय था, माहिष्मतीपुरमें राजा महीजित् अपने राज्यका पालन करते थे, किन्तु उन्हें कोई पुत्र नहीं था; इसलिये वह राज्य उन्हें सुखदायक नहीं प्रतीत होता था। अपनी अवस्था अधिक देख राजाको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने प्रजावर्गमें बैठकर इस प्रकार कहा—'प्रजाजनो! इस जन्ममें मुझसे कोई पातक नहीं हुआ। मैंने अपने खजाने-में अन्यायसे कमाया हुआ धन नहीं जमा किया है। ब्राह्मणों और देवताओंका धन भी मैंने कभी नहीं लिया है। प्रजाका पुत्रवत् पालन किया, धर्मसे पृथ्वीपर अधिकार जमाया तथा दुष्टोंको, वे बन्धु और पुत्रोंके समान ही क्यों न रहे हों, दण्ड दिया है। शिष्ट पुरुषोंका सदा सम्मान किया और किसीको द्वेषका पात्र नहीं समझा। फिर क्या कारण है, जो मेरे घरमें आजतक पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। आपलोग इसका विचार करें।'

राजाके ये वचन सुनकर प्रजा और पुरोहितोंके साथ ब्राह्मणोंने उनके हितका विचार करके गहन वनमें प्रवेश किया। राजाका कल्याण चाहनेवाले वे सभी लोग इधर-उधर घूमकर ऋषिसेवित आश्रमोंकी तलाश करने लगे। इतनेहीमें उन्हें मुनिश्रेष्ठ लोमशका दर्शन हुआ। लोमशजी धर्मके तत्त्वज्ञ, सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशिष्ट विद्वान्, दीर्घायु और महात्मा हैं। उनका शरीर लोमसे भरा हुआ है। वे ब्रह्माजीके समान तेजस्वी हैं। एक-एक कल्प बीतनेपर उनके शरीरका एक-एक लोम विशीर्ण होता—टूटकर गिरता है; इसीलिये उनका नाम लोमश हुआ है। वे महामुनि तीनों कालोंकी बातें जानते हैं। उन्हें देखकर सब लोगोंको बड़ा हर्ष हुआ। उन्हें निकट आया देख लोमशजीने पूछा—'तुम सब लोग किसलिये यहाँ आये हो? अपने आगमनका कारण बताओ। तुम लोगोंके लिये जो हितकर कार्य होगा, उसे मैं अवश्य करूँगा।'

प्रजाओंने कहा—ब्रह्मन्! इस समय महीजित् नाम-वाले जो राजा हैं, उन्हें कोई पुत्र नहीं है। हमलोग उन्हींकी प्रजा हैं, जिनका उन्होंने पुत्रकी भाँति पालन किया है। उन्हें पुत्रहीन देख, उनके दुःखसे दुखित हो हम तपस्या करनेका दृढ़ निश्चय करके यहाँ आये हैं। द्विजोत्तम! राजाके भाग्यसे इस समय हमें आपका दर्शन मिल गया है। महापुरुषोंके दर्शनसे ही मनुष्योंके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। मुने! अब हमें उस उपायका उपदेश कीजिये, जिससे राजाको पुत्रकी प्राप्ति हो।

उनकी बात सुनकर महर्षि लोमश दो घड़ीतक ध्यान-मग्न हो गये। तत्पश्चात् राजाके प्राचीन जन्मका वृत्तान्त जानकर उन्होंने कहा—'प्रजावृन्द! सुनो—राजा महीजित् पूर्वजन्ममें मनुष्योंको चूसनेवाला धनहीन वैश्य था। वह वैश्य गाँव-गाँव घूमकर व्यापार किया करता था। एक दिन जेठके शुक्लपक्षमें दशमी तिथिको, जब दोपहरका सूर्य तप रहा था, वह गाँवकी सीमामें एक जलाशयपर पहुँचा। पानीसे भरी हुई बावली देखकर वैश्यने वहाँ जल पीनेका विचार किया। इतनेहीमें वहाँ बछड़ेके साथ एक गौ भी आ पहुँची। वह प्याससे व्याकुल और तापसे पीड़ित थी; अतः बावलीमें जाकर जल पीने लगी। वैश्यने पानी पीती हुई गायको

हाँककर दूर हटा दिया और स्वयं पानी पीया। उसी पापकर्मके कारण राजा इस समय पुत्रहीन हुए हैं। किसी जन्मके पुण्यसे इन्हें अकण्टक राज्यकी प्राप्ति हुई है।'

प्रजाओंने कहा—मुने! पुराणमें सुना जाता है कि प्रायश्चित्तरूप पुण्यसे पाप नष्ट होता है; अतः पुण्यका उपदेश कीजिये, जिससे उस पापका नाश हो जाय।

लोमशजी बोले—प्रजाजनो! श्रावण मासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, वह 'पुत्रदा'के नामसे विख्यात है। वह मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाली है। तुमलोग उसीका व्रत करो।

यह सुनकर प्रजाओंने मुनिको नमस्कार किया और नगरमें आकर विधिपूर्वक पुत्रदा एकादशीके व्रतका अनुष्ठान किया। उन्होंने विधिपूर्वक जागरण भी किया और उसका निर्मल पुण्य राजाको दे दिया। तत्पश्चात् रानीने गर्भ धारण किया और प्रसवका समय आनेपर बलवान् पुत्रको जन्म दिया।

इसका माहात्म्य सुनकर मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है तथा इहलोकमें सुख पाकर परलोकमें स्वर्गीय गतिको प्राप्त होता है।

भाद्रपद मासकी 'अजा' और 'पद्मा' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि भाद्रपद मासके कृष्णपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है? कृपया बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! एकचित्त होकर सुनो। भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी एकादशीका नाम 'अजा' है, वह सब पापोंका नाश करनेवाली बतायी गयी है। जो भगवान् हृषीकेशका पूजन करके इसका व्रत करता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। पूर्वकालमें हरिश्चन्द्र नामक एक विख्यात चक्रवर्ती राजा हो गये हैं, जो समस्त भूमण्डलके स्वामी और सत्यप्रतिज्ञ थे। एक समय किसी कर्मका फलभोग प्राप्त होनेपर उन्हें राज्यसे भ्रष्ट होना पड़ा। राजाने अपनी पत्नी और पुत्रको बेचा। फिर अपनेको भी बेच दिया। पुण्यात्मा होते हुए भी उन्हें चाण्डालकी दासता करनी पड़ी। वे मुर्दोंका कफन लिया करते थे। इतनेपर भी नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र सत्यसे विचलित नहीं हुए। इस प्रकार चाण्डालकी दासता करते उनके अनेक वर्ष व्यतीत हो गये। इससे राजाको बड़ी चिन्ता हुई। वे अत्यन्त दुखी होकर सोचने लगे—'क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कैसे मेरा उद्धार होगा?' इस प्रकार चिन्ता करते-करते वे शोकके समुद्रमें डूब गये। राजाको आतुर जानकर कोई मुनि उनके पास आये, वे महर्षि गौतम थे। श्रेष्ठ ब्राह्मणको आया देख नृपश्रेष्ठने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़ गौतमके सामने खड़े होकर अपना सारा दुःखमय समाचार कह सुनाया। राजाकी बात सुनकर गौतमने कहा—'राजन्! भादोंके कृष्णपक्षमें अत्यन्त कल्याणमयी 'अजा' नामकी एकादशी आ रही है, जो पुण्य प्रदान करनेवाली है। इसका व्रत करो। इससे पापका अन्त होगा। तुम्हारे भाग्यसे आजके सातवें दिन एकादशी है। उस दिन उपवास करके रातमें जागरण करना।'

ऐसा कहकर महर्षि गौतम अन्तर्धान हो गये। मुनिकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने उस उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया। उस व्रतके प्रभावसे राजा सारे दुःखोंसे पार हो गये। उन्हें पत्नीका सन्निधान और पुत्रका जीवन मिल गया। आकाशमें दुन्दुभियाँ बज उठीं। देवलोकसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। एकादशीके प्रभावसे राजाने अकण्टक राज्य प्राप्त किया और अन्तमें वे पुरजन तथा परिजनोंके साथ स्वर्गलोकको प्राप्त हो गये। राजा युधिष्ठिर! जो मनुष्य ऐसा व्रत करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें जाते हैं। इसके पढ़ने और सुननेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है।

युधिष्ठिरने पूछा—केशव! भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम, कौन देवता और कैसी विधि है? यह बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! इस विषयमें मैं तुम्हें आश्चर्यजनक कथा सुनाता हूँ; जिसे ब्रह्माजीने महात्मा नारदसे कहा था।

नारदजीने पूछा—चतुर्मुख! आपको नमस्कार है। मैं भगवान् विष्णुकी आराधनाके लिये आपके मुखसे यह सुनना चाहता हूँ कि भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है?

ब्रह्माजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है। क्यों न हो, वैष्णव जो ठहरे। भादोंके शुक्लपक्षकी एकादशी 'पद्मा' के नामसे विख्यात है। उस दिन भगवान् हृषीकेशकी पूजा होती है। यह उत्तम व्रत अवश्य करने योग्य है।

सूर्यवंशमें मान्धाता नामक एक चक्रवर्ती, सत्यप्रतिज्ञ और प्रतापी राजर्षि हो गये हैं। वे प्रजाका अपने औरस पुत्रोंकी भाँति धर्मपूर्वक पालन किया करते थे। उनके राज्यमें अकाल नहीं पड़ता था, मानसिक चिन्ताएँ नहीं सताती थीं और व्याधियोंका प्रकोप भी नहीं होता था। उनकी प्रजा निर्भय तथा धन-धान्यसे समृद्ध थी। महाराजके कोषमें केवल न्यायोपार्जित धनका ही संग्रह

था। उनके राज्यमें समस्त वर्णों और आश्रमोंके लोग अपने-अपने धर्ममें लगे रहते थे। मान्धाताके राज्यकी भूमि कामधेनुके समान फल देनेवाली थी। उनके राज्य करते समय प्रजाको बहुत सुख प्राप्त होता था। एक समय किसी कर्मका फल-भोग प्राप्त होनेपर राजाके राज्यमें तीन वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई। इससे उनकी प्रजा भूखसे पीड़ित हो नष्ट होने लगी; तब सम्पूर्ण प्रजाने महाराजके पास आकर इस प्रकार कहा—

प्रजा बोली—नृपश्रेष्ठ! आपको प्रजाकी बात सुननी चाहिये। पुराणोंमें मनीषी पुरुषोंने जलको 'नारा' कहा है; वह नारा ही भगवान्‌का अयन—निवासस्थान है; इसलिये वे नारायण कहलाते हैं। नारायणस्वरूप भगवान् विष्णु सर्वत्र व्यापकरूपमें विराजमान हैं। वे ही मेघस्वरूप होकर वर्षा करते हैं, वर्षासे अन्न पैदा होता है और अन्नसे प्रजा जीवन धारण करती है। नृपश्रेष्ठ! इस समय अन्नके बिना प्रजाका नाश हो रहा है; अतः ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे हमारे योगक्षेमका निर्वाह हो।

राजाने कहा—आपलोगोंका कथन सत्य है, क्योंकि अन्नको ब्रह्म कहा गया है। अन्नसे प्राणी उत्पन्न होते हैं और अन्नसे ही जगत् जीवन धारण करता है। लोकमें बहुधा ऐसा सुना जाता है तथा पुराणमें भी बहुत विस्तारके साथ ऐसा वर्णन है कि राजाओंके अत्याचारसे प्रजाको पीड़ा होती है; किन्तु जब मैं बुद्धिसे विचार करता हूँ तो मुझे अपना किया हुआ कोई अपराध नहीं दिखायी देता। फिर भी मैं प्रजाका हित करनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करूँगा।

ऐसा निश्चय करके राजा मान्धाता इने-गिने व्यक्तियोंको साथ ले विधाताको प्रणाम करके सघन वनकी ओर चल दिये। वहाँ जाकर मुख्य-मुख्य मुनियों और तपस्वियोंके आश्रमोंपर घूमते फिरे। एक दिन उन्हें ब्रह्मपुत्र अङ्गिरा ऋषिका दर्शन हुआ। उनपर दृष्टि पड़ते ही राजा हर्षमें भरकर अपने वाहनसे उतर पड़े और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया। मुनिने भी 'स्वस्ति' कहकर राजाका अभिनन्दन किया और उनके राज्यके सातों अङ्गोंकी कुशल पूछी। राजाने अपनी कुशल बताकर मुनिके स्वास्थ्यका समाचार पूछा। मुनिने राजाको आसन और अर्घ्य दिया। उन्हें ग्रहण करके जब वे मुनिके समीप बैठे तो उन्होंने इनके आगमनका कारण पूछा।

तब राजाने कहा—भगवन्! मैं धर्मानुकूल प्रणालीसे पृथ्वीका पालन कर रहा था। फिर भी मेरे राज्यमें वर्षाका अभाव हो गया। इसका क्या कारण है इस बातको मैं नहीं जानता।

ऋषि बोले—राजन्! यह सब युगोंमें उत्तम सत्ययुग है। इसमें सब लोग परमात्माके चिन्तनमें लगे रहते हैं। तथा इस समय धर्म अपने चारों चरणोंसे युक्त होता है। इस युगमें केवल ब्राह्मण ही तपस्वी होते हैं, दूसरे लोग नहीं। किन्तु महाराज! तुम्हारे राज्यमें यह शूद्र तपस्या करता है; इसी कारण मेघ पानी नहीं बरसाते। तुम इसके प्रतीकारका यत्न करो; जिससे यह अनावृष्टिका दोष शान्त हो जाय।

राजाने कहा—मुनिवर! एक तो यह तपस्यामें लगा है, दूसरे निरपराध है; अतः मैं इसका अनिष्ट नहीं करूँगा। आप उक्त दोषको शान्त करनेवाले किसी धर्मका उपदेश कीजिये।

ऋषि बोले—राजन्! यदि ऐसी बात है तो एकादशीका व्रत करो। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें जो 'पद्मा' नामसे विख्यात एकादशी होती है, उसके व्रतके प्रभावसे निश्चय ही उत्तम वृष्टि होगी। नरेश! तुम अपनी प्रजा और परिजनोंके साथ इसका व्रत करो।

ऋषिका यह वचन सुनकर राजा अपने घर लौट आये। उन्होंने चारों वर्णोंकी समस्त प्रजाओंके साथ भादोंके शुक्ल पक्षकी 'पद्मा' एकादशीका व्रत किया। इस प्रकार व्रत करनेपर मेघ पानी बरसाने लगे। पृथ्वी जलसे आप्लावित हो गयी और हरी-भरी खेतीसे सुशोभित होने लगी। उस व्रतके प्रभावसे सब लोग सुखी हो गये।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! इस कारण इस उत्तम व्रतका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। 'पद्मा' एकादशीके दिन जलसे भरे हुए घड़ेको वस्त्रसे ढँककर दही और चावलके साथ ब्राह्मणको दान देना चाहिये, साथ ही छाता और जूता भी देने चाहिये। दान करते समय निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक ॥
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव।
भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव लोकानां सुखदायकः ॥
(५९। ३८-३९)

'[बुधवार और श्रवण नक्षत्रके योगसे युक्त द्वादशीके दिन] बुद्धश्रवण नाम धारण करनेवाले भगवान् गोविन्द! आपको नमस्कार है, नमस्कार है; मेरी पापराशिका नाश करके आप मुझे सब प्रकारके सुख प्रदान करें। आप पुण्यात्माजनोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले तथा सुखदायक हैं।'

राजन्! इसके पढ़ने और सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

कल्याणकी पुरानी फाइलों तथा विशेषाङ्कोंका ब्योरा

इनमें ग्राहकोंको कमीशन नहीं दिया जायगा । डाकखर्च हमारा लगेगा ।

पुराने अङ्कोंमेंसे केवल निम्नलिखित अङ्क ही प्राप्य हैं। इनके सिवा और कोई विशेषाङ्क या साधारण अङ्क प्राप्य नहीं है ।

११ वें वर्षका विशेषाङ्क (वेदान्ताङ्क) नहीं है । साधारण अङ्क ३ से १२ तक प्राप्य हैं । मूल्य १॥)

१५ वें वर्षका विशेषाङ्क (साधनाङ्क) नहीं है । साधारण अङ्क २, ३, ४ प्राप्य हैं, मूल्य ।) प्रति ।

१६ वें वर्षका विशेषाङ्क (भागवताङ्क) नहीं है । साधारण अङ्क केवल ११, १२ हैं, मूल्य ।) प्रति ।

१९ वें वर्षका विशेषाङ्क संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क—मूल्य ४≶), पूरे वर्षका मूल्य भी ४≶)

सजिल्द अङ्कोंकी व्यवस्था नहीं हो सकेगी । दाम वापिस किये जा रहे हैं ।

व्यवस्थापक—**कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर**

THE KALYANA-KALPATARU

(English Edition of the Kalyan)

Special Numbers and Old Files for Sale

1. **Vol. I., 1934** (Complete file of 12 numbers including the Special issue, GOD NUMBER) pp. 836; Illustrations 63; Unbound Rs. 4-8-0
2. **Vol. II.**, (only 11 ordinary issues, excluding the Special issue, the Gita Number) Unbound Rs. 2-0-0
3. **Vol. III.**, (only 11 ordinary issues, excluding Special issue, the Vedanta Number) Unbound Rs. 2-0-0
4. **Vol. IV.**, (only 11 ordinary issues, excluding Special issue, the Krishna Number) Unbound Rs. 2-0-0
5. **Vol. V.**, (Special issue, The Divine Name Number out of stock) ordinary issues, 2, 5, 6, 7, 8, 9 & 10. Each 0-5-0
6. **Vol. VIII.**, (Special issue The Bhakta Number out of stock) ordinary issues 7, 9, 10, 11 & 12. Each 0-5-0
7. **Vol. X.**, (Complete file of 12 Numbers including special Shri Krishna Lila Number Part—II) Rs. 4-8-0
8. **Vol. XI.**, (Current year subscription including Special number Cow Number) Rs. 3-0-0

The Manager—
KALYANA-KALPATARU, GORAKHPUR (India)

Postage free in all cases.

Regd. No. A. 175.

भगवान्‌का स्तवन

यं न स्पृशन्ति गुणजातिशरीरधर्मा यं न स्पृशन्ति गतयः खमिवेन्द्रियाणाम् ।
यं न स्पृशन्ति मुनयो गतसङ्गमोहास्तस्मै नमो भगवते हरये प्रतीचे ॥
यद्ध्यानसंचयनतूर्णवशीकृताङ्गामैश्वर्यचारुगुणितां सुखमोक्षलक्ष्मीम् ।
आलिङ्ग्य शेरत इहात्मसुखैकलाभास्तस्मै नमोऽस्तु हरये मुनिसेविताय ॥
जन्मादिभावविकृतेर्विरहस्वभावो यस्मिन्नयं परिधुनोति षडूर्मिवर्गम् ।
यं ताडयन्ति न सदा मदनादिदोषास्तं वासुदेवममलं प्रणतोऽस्मि हृद्यम् ॥
स्थूलं विलाप्य करणं करणे निदाने तत्कारणं करणकारणवर्जिते च ।
इत्थं विलाप्य यमिनः प्रविशन्ति यत्र तस्मै नमोऽस्तु हरये मुनिसेविताय ॥
यद्ध्यानसंगतमलं विजहात्यविद्यां यद्ध्यानवह्निपतितं जगदेति दाहम् ।
यद्ध्यानमुल्लसदसिर्द्यति संशयाब्धिं तं त्वां हरिं विशदबोधघनं नमामि ॥
(पद्म० उत्तर० २४९ । ११२–११६)

देवद्युतिने कहा—गुण, जाति और शरीरके धर्म जिनका स्पर्श नहीं करते, जैसे आकाशचारी जीवोंकी चाल आकाशको नहीं छू पाती, उसी प्रकार इन्द्रियोंकी गति जिनका स्पर्श नहीं कर पाती, आसक्ति और मोहसे रहित मुनि भी जिनका स्पर्श नहीं कर पाते, उन प्रत्यगात्मस्वरूप भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है। इस जीवनमें ही एकमात्र आत्मानन्दकी उपलब्धि करनेवाले ज्ञानी पुरुष जिनके ध्यानसे तुरंत वशीभूत हुई ऐश्वर्यके मनोहर गुणोंसे युक्त आनन्दमयी मोक्ष-लक्ष्मीको हृदयसे लगाकर सोते हैं, उन मुनिजनसेवित श्रीहरिको प्रणाम है। जिनमें जन्म आदि भाव-विकारोंका स्वाभाविक अभाव है; जो क्षुधा-पिपासा, शोक-मोह तथा जरा-मृत्युरूप—छः ऊर्मियोंको नष्ट करते हैं और काम आदि दोष जिनपर कभी प्रहार नहीं कर पाते, उन निर्मल एवं हृदयको आनन्द देनेवाले भगवान् वासुदेवको मैं प्रणाम करता हूँ। संयमी योगी पुरुष स्थूल इन्द्रियको उसके कारणभूत सूक्ष्म इन्द्रियमें तथा उस कारणभूत इन्द्रियको भी करण और कारणसे रहित जिन परमात्मामें विलीन करके स्वयं भी उन्हींमें प्रवेश कर जाते हैं, उन मुनिजनसेवित भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जिनके चिन्तनमें तत्पर हुए साधक अविद्याका परित्याग कर देते हैं, जिनके ध्यानरूपी अग्निमें पड़ा हुआ मायामय संसार भस्म हो जाता है तथा जिनके ध्यानकी चमकती हुई तलवार सागरके समान महान् संशयका नाश कर डालती है, उन उज्ज्वल ज्ञानघनस्वरूप आप श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ।